Year 10, Issue 39
July - Sept., 2013

कैनेडा से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका

वसुधा

A CANADIAN PUBLICATION
VASUDHA
EDITOR - PUBLISHER : SNEH THAKORE

संपादन व प्रकाशन
स्नेह ठाकुर

वर्ष १० - अंक ३९, जुलाई-सितम्बर २०१३

cover
Thursday, May 30, 2013 8:34:39 AM

भारत-वन्दना

वीरेन्द्र 'कुसुमाकर'

उस भारत माता को प्रणाम!
शत रजत कोष जिस पर निसार
सागर धोता पद-रज जिसकी
बहती गंगा की धवल-धार।।
जिसकी संस्कृति गौरवशाली
फैला है जग में यश-ललाम।
उस भारत माता को प्रणाम!
भू पर जिसकी फूटती प्रथम
अरुणिम प्रभात की अरुणाई।
गुंजित वन-उपवन, स्वर बहते
विहगों से गुंजित अमराई।।
मलयज समीर है टहल रहा
जिसके मधु ऋतु की बाँह थाम।
उस भारत माता को प्रणाम!
अरुणोदय की स्वर्णाभ उषा
उतरे सज्जित हो गगनांगन।
कर में किरणों की कनक-थाल
ले करती जननी का अर्चन।।
आरती उतार रही अनुदिन
जिसकी पावनता पुण्य काम।
उस भारत माता को प्रणाम!
जिसकी धरती वैभव शाली
माटी में रचा बसा चन्दन।
देवों-ऋषियों की तपस्थली
श्रुति करते हैं जिसका वन्दन।।
वसुन्धा-कुटुम्बकम् मंत्र रहा
मंदिर जिसका प्रत्येक धाम।
उस भारत माता को प्रणाम!
मेखला बनी गिरिमालायें
दे रहे अर्घ्य जिसको प्राप्त।
जिसकी वाणी में काम-धेनु
जिसके चिंतन में पारिजात।।
जिसकी लीला में कृष्ण बसे
जिसके पौरुष में बसे राम।
उस भारत माता को प्रणाम!

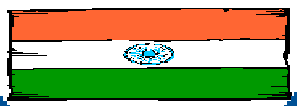

वसुधा

संपादन व प्रकाशन : स्नेह ठाकुर

शीर्षक	रचयिता	पृष्ठ
संपादकीय		२
मेरे प्यारे भारत	बैराम हलिति	
भावानुवाद :	पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि	७
सामाजिक परिवर्तन और अनुवाद	डॉ. आर.पी. सिंह	८
संचरण के गीत मत रुकना	डॉ. नरेश कात्यायन	१२
घर	डॉ. ब्रजेन्द्र त्रिपाठी	१३
रश्मि द्वार खोलें	डॉ. सुमेर सिंह 'शैलेश'	१५
शरणागत	वृंदावनलाल वर्मा	१६
ज़िंदगी भी मुस्कुरा देगी	गोवर्धन यादव	२०
उज्जैन : श्लोक से लोक तक की		
आस्था का केंद्र महकालेश्वर	डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा	२१
आनन्द हो गया	कवि आनन्द	२६
देश प्रीत	डॉ. महेश दिवाकर	२७
मुसीबतों के पहाड़ और एक अदद अभिनेता	डॉ. हरीश नवल	२९
ग़ज़ल	डॉ. श्याम सखा श्याम	३२
हिन्दी का शतकीय इतिहास :		
विकासात्मक परिदृश्य	डॉ. पूरन चन्द टंडन	३३
अंचल से अंतरिक्ष तक हिन्दी	सुरेश चंद्र शुक्ल 'शरद आलोक'	३९
वचन दीजिये	पुष्पा 'सुमन'	४०
शान्ति दूत : नेल्सन मंडेला	जय वर्मा	४१
व्यंग्य का सही दृष्टिकोण	डॉ. प्रेम जनमेजय	४३

रचनाओं में निहित विचार तथा मन्तव्य रचनाकारों के निजी विचार तथा मन्तव्य हैं। 'वसुधा' रचनाकारों के विचारों के लिए उत्तरदायी नहीं है। प्रकाशक की आज्ञा बिना कोई रचना किसी प्रकार उद्धृत नहीं की जानी चाहिए। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा।

रचनाएँ भेजने के लिए सम्पर्क पता :
16 Revlis Crescent, Toronto, Ontario M1V-1E9, Canada. TEL. 416-291-9534
वार्षिक शुल्क Annual subscription.....$25.00
डाक द्वारा By Mail, Canada & USA.....$35.00, Other Countries.....$40.00
Website: http://www.Vasudha1.webs.com
e-mail: sneh.thakore@rogers.com

संपादकीय

इस बार की भारत यात्रा का शुभारम्भ हुआ प्रिय अशोक चक्रधर जी की पुत्री चिरंजीवी स्नेहा के शुभ विवाह उत्सव से. सजी-धजी घोड़ी पर चढ़े छत्र के नीचे बैठे राजकुमार डेविड की बारात तामझाम के साथ आई और उसी तामझाम के साथ ढोल, नगाड़ों और शहनाई के बीच भव्य रूप से बारात की अगवानी हुई. जिस भव्यता से यह पवित्र संस्कार आरंभ हुआ उसी भव्यता से यह सम्पन्न हुआ. इसमें सम्मिलित होने के आमंत्रण हेतु ठाकुर साहब व मैं अशोक जी एवं बागेश्री जी के आभारी हैं.

मध्य प्रदेश साहित्य अकादमी, मध्य प्रदेश ग्रंथ अकादमी एवं कालिदास अकादमी उज्जैन के सौजन्य से उज्जैन में डॉ. त्रिभुवन नाथ शुक्ल के निर्देशन में एक भव्य द्विदिवसीय अंतर्राष्ट्रीय साहित्य-संवाद का आयोजन हुआ जहाँ मेरी सद्य: प्रकाशित दो पुस्तकों, 'चिंतन के धागों में कैकेयी : संदर्भ श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण' शोध-ग्रंथ एवं 'आज का समाज' सामाजिक, सामयिक आलेख संग्रह का विमोचन हुआ तथा मुख्य अतिथि व सत्र की अध्यक्षता से सम्मानित की गयी, तीनों संस्थाओं की आभारी हूँ. महाकाल और कालिदास की नगरी में जहाँ अनेक विद्वत जनों से परिचय हुआ, साहित्य पर विचार-विमर्श हुआ वहीं महाकाल के साथ ही साथ, भैरवनाथ, गणेश मन्दिर, हनुमान् मन्दिर, क्षिप्रा नदी आदि पावन स्थलों के दर्शन हुये. डॉ. कृष्ण मुरारी मिश्र का स्नेह-सिक्त मार्गदर्शन अविस्मरणीय रहेगा. डॉ. सुष्मिता पांडे जो स्वयं साहित्य-संवाद में उपस्थित न हो सकीं पर उनके सौजन्य से विक्रमादित्य विश्वविद्यालय के डॉ. शैलेन्द्रकुमार शर्मा से परिचय हुआ जो प्रवासी साहित्य के प्रति विचार-विमर्श का आधार-स्तंभ बना.

गीत ऋषि, पद्मभूषण डॉ. गोपालदास 'नीरज' को समर्पित, संस्थाध्यक्ष डॉ. नरेश कात्यायन द्वारा विश्वेश्वरैया सभागार में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी कविता समारोह के सफल एवं भव्य आयोजन हेतु डॉ. नरेश कात्यायन तथा उनकी सम्पूर्ण आयोजन-मण्डली को बधाई. एक से एक बढ़कर चालीस समर्थ कवियों का सुरुचिपूर्ण ढंग से महासचिव डॉ. कमलेश द्विवेदी द्वारा संचालित कवि सम्मेलन, आनंदित श्रोतागणों की उपस्थिति में सांध्य पाँच बजे आरंभ होकर रात्रि के साढ़े ग्यारह बजे तक चला. जहाँ अखिल भारतीय मंचीय कवि पीठ, उ.प्र. संस्था द्वारा प्रदत्त 'विश्व हिन्दी सेवा सम्मान' के प्रति आभारी हूँ वहीं 'चिंतन के धागों में कैकेयी : संदर्भ श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण' शोध-ग्रंथ एवं 'आज का समाज' सामाजिक, सामयिक आलेख संग्रह के नीरज जी व अन्य विद्वत जनों द्वारा लोकार्पण हेतु भी.

हमारा कोई लखनऊ प्रवास नहीं होता जिसमें लखनऊ के पूर्व महापौर डॉ. दाऊजी गुप्त का स्नेहिल सान्निध्य न मिला हो. इस बार के लखनऊ प्रवास में भी प्रिय दाऊजी का स्नेहिल साहचर्य लगातार प्राप्त हुआ, आभारी हूँ.

लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग एवं विभागाध्यक्ष डॉ. के.डी. सिंह तथा कानपुर के डॉ. प्रदीप दीक्षित, अध्यक्ष अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी भाषा संकल्प समारोह व दिल्ली में बाबू गुलाबराय स्मृति संस्थान के आमंत्रण हेतु आभारी हूँ पर अपरिहार्य कारणों से वहाँ उपस्थिति सम्भव न हो सकी. खेद सहित क्षमा याचना.

भारत के राष्ट्रपति के विशेषकार्याधिकारी डॉ. आर. पी. सिंह के सौजन्य से राष्ट्रपति भवन में इस बार दो बार जाना हुआ. साहित्य व सम्बंधित अन्य विषयों पर बड़ी सरगर्भित चर्चा हुयी. उनके अमूल्य समय, उनके आत्मीय सत्कार हेतु ठाकुर साहब व मैं हृदय से अत्यंत आभारी हैं.

शिक्षा भवन रोहिणी की निदेशक डॉ. ममता सिंह ने शिक्षा संस्थान के एक भव्य आयोजन में ठाकुर साहब व मेरा सम्मान किया. डॉ. ऋचा सिंह ने नृत्य कार्यक्रम का आयोजन किया. भवन के हस्तकला विभाग की शिक्षिका अलका जी व उनकी छात्राएँ किरण तथा सविता ने अपने हस्तकौशल से निर्मित उपहारों से अभिभूत कर एक मर्मस्पर्शी दृश्य उपस्थित कर दिया था जो मेरी अमूल्य थाती बन मेरे साथ सदैव बना रहेगा.

कथा यू.के. व डी.ए.वी. गर्ल्स कॉलेज यमुना नगर के सौजन्य से द्विदिवसीय अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन हुआ. प्राचार्या डॉ. सुषमा आर्या, महासचिव श्री तेजेन्द्र शर्मा, संरक्षक ज़किया ज़ुबैरी, सह-आयोजक डॉ. अजय नावरिया तथा अन्य सभी के अथक परिश्रम से आयोजन सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ. आयोजन में भागीदारी एवं सत्र की अध्यक्षता हेतु आभार.

कर्नाटक की अम्माँ जिनके आशीर्वादस्वरूप राम-कथा संदर्भ ग्रंथों व उपन्यास का सृजन संभव हुआ है, ने अपने पावन-पुनीत आश्रम में अपने भक्तों से परिचित कराया. रोमांचकारी सुअवसर था जहाँ हर व्यक्ति ने अपने रोमांचित अनुभव सुनाये. अम्माँ का आशीर्वाद मेरी अनमोल पूँजी है.

राज भाषा विभाग के संयुक्त सचिव डॉ. दिलीप पाण्डे जी ने दो पुस्तकें 'श्रीराम के युग का तिथि निर्धारण' व 'वैदिक युग एवं रामायण काल की ऐतिहासिकता' उपहारस्वरूप देकर कृतार्थ किया वहीं पेट की क्षुधा भी षटरस भोजन द्वारा आल्हादित कर शांत की.

पिछले वर्षों की भाँति इस वर्ष भी अक्षरम का ११वाँ हिन्दी उत्सव श्री अनिल जोशी, श्रीमती सरोज शर्मा, श्री नरेश शाण्डिल्य, डॉ. विमलेशकांति वर्मा, श्री अतुल प्रभकार, श्रीमती अलका सिन्हा, श्रीमती सत्या त्रिपाठी व उनकी संपूर्ण टीम के निर्देशन में सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ. सत्र एवं कवि सम्मेलन में सहभागिता हेतु आभार. अनिल जी की कर्मठता सराहनीय है जो इतने वर्षों से इस आयोजन को आयोजित करते आ रहे हैं.

हिन्दी उप-सचिव श्रीमती सुनीति शर्मा व विभाग के श्री आनन्द कुमार जी से दो बार मिलन हुआ. जहाँ भाषा व अन्य विषयों पर विचार-विमर्श ने मानसिक तृप्ति प्रदान की वहीं चाय-नाश्ते ने शारीरिक ताज़गी भी दी. ठाकुर साहब व मैं आभारी हैं.

इस बार मंदसौर पी.जी. कॉलेज के प्राचार्य डॉ. खिमेसरा का आमंत्रण पा सुखानुभूति हुई, विषेशरूप से इसलिये भी कि पिता जी एक समय वहाँ पर पुलिस पदाधिकारी थे अत: मेरी दो साल की कॉलेज शिक्षा वहीं हुयी. हिन्दी विभाग की विभागाध्यक्ष डॉ. श्रीमती गुणमाला खिमेसरा ने अपनी कक्षाओं में मेरे पिछले वर्ष प्रकाशित उपन्यास 'कैकेयी चेतना-शिखा' तथा इस वर्ष प्रकाशित 'चिंतन के धागों में कैकेयी - संदर्भ : श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण' पर व्याख्यान आयोजित किए. प्राचार्य जी व डॉ. श्याम तिवारी ने पशुपतिनाथ जाने का सौभाग्य प्राप्त कराया. डॉ. तिवारी संपूर्ण समय किसी न किसी रूप में सहायक रहे. डॉ. आशीष खिमेसरा की भी आभारी हूँ जिन्होंने ठाकुर साहब के अस्वस्थ्य होने पर बड़ी सहायता कि थी. आशीष को हम दोनों की आशीष. मंदसौर से वापस दिल्ली की यात्रा के पड़ाव में आसावरी माता व साँवलिया सेठ अविस्मरणीय रहेंगे, साथ ही उदयपुर के दर्शनीय रमणीय स्थल - सहेलियों की बाड़ी, सिटी पैलेस, पिछौरा लेक, लेक पैलेस आदि भी.

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का अमृत महोत्सत्व गाँधी स्मृति भवन में न्यायमूर्ति चंद्रशेखर धर्माधिकारी जी व निदेशक मणिमाला जी के निर्देशन में धूमधाम से सम्पन्न हुआ. आमंत्रण हेतु आभार.

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के श्री अशोक जजोरिया जी की आभारी हूँ जिन्होंने जिह्वा के लिए सुस्वादु भोजन के साथ ही साहित्यिक विचार-विमर्श की मानसिक तृप्ति भी प्रदान की. खड़ी बोली हिन्दी के प्रणेता भारतेंदु हरिश्चंद्र पर गगनाञ्चल का विशेषांक निकालने की योजना पर उन्हें बधाई.

डॉ. गंगाप्रसाद विमल जी, श्री उपेन्द्रनाथ एवं श्री सत्येन्द्र कुमार के आत्मीय सहयोग तथा सदाशयता हेतु ठाकुर साहब व मैं आभारी हैं.

आगरा की ऐतिहासिक, रोमांटिक नगरी में अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति के अध्यक्ष डॉ. श्रीभगवान शर्मा द्वारा आमंत्रित हो तथा उनके सौजन्य से ही अनेक अन्य संस्थाओं द्वारा विशिष्ट अतिथि का आतिथ्य ग्रहण कर रोमांचित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ. जैन परिवार द्वारा स्वागत-सत्कार उपरान्त सर्वप्रथम कार्यक्रम केंद्रीय हिन्दी संस्थान में नारी दिवस का था. कुल सचिव डॉ. चंद्रकांत त्रिपाठी तथा उनके सहयोगी शिक्षक-वर्ग तथा छात्र-छात्राओं के सहयोग से भव्य आयोजन का शुभारंभ हुआ. तत्पश्चात् निम्नांकित संस्थाओं ने विशिष्ट अतिथि के रूप में अभिभूत किया, फूल मालाओं से लाद दिया. उन स्नेहिल फूलों की सुगंध अभी तक मन-प्राण को सुवासित किए हुये है. गणमान्य संस्थाएँ व संबंधित विद्वत व्यक्ति थे डॉ. ब्रज खंडेलवाल - अध्यक्ष ब्रज हेरिटेज, डॉ. सुरेन्द्र शर्मा - गोवर्धन होटल के मालिक, श्री राकेश अग्रवाल - अध्यक्ष काव्य, कला, भगत संगीत परिषद्, श्री गोकुलेश - अध्यक्ष अखाड़ा नूरी दरवाज़ा, डॉ. जितेंद्र रघुवंशी - अध्यक्ष इंडियन पीपुल थियेटर, श्री अनिल जैन - अध्यक्ष फ्रेंड्स ग्रुप थिएटर, श्रीमती वत्सला प्रभाकर - अध्यक्ष महिला शांति सेना, डॉ. शशि प्रभा जैन - अध्यक्ष नारी अस्मिता समिति, श्रीमती सरोज गौरिहार - अध्यक्ष नागरी प्रचारिणी सभा, डॉ. शशि गोयल - अध्यक्ष नारी लेखिका संघ, डॉ. राम अवतार शर्मा - संस्थापक देह दान, कवियों में श्री सोम ठाकुर, चौधरी बदन सिंह, चौधरी सुखराम सिंह, डॉ. शशि तिवारी. सिम्बोजिया गर्ल्स कॉलेज प्राचार्य डॉ. राणा, उनकी शिक्षिकाओं और छात्राओं ने एक अद्वितीय मनमोहक सांस्कृतिक प्रोग्राम का आयोजन किया. इस साहित्यिक महाकुंभ का अंत हुआ डॉ. हरिमोहन शर्मा के निवास स्थान पर.

आगरा के हिन्दी साहित्याकाश के ज्वलंत नक्षत्र डॉ. श्रीभगवान शर्मा तथा सभी गणमान्य संस्थाओं व उनके गणमान्य व्यक्तियों व मीडिया की आभारी हूँ जिन्होंने ठाकुर साहब व मुझे अपनी आत्मीयता, अपने अतिथि भाव से अभिभूत किया.

श्री इन्दर जैन, श्रीमती मिथिलेश जैन व उनके परिवार की ठाकुर साहब व अपने स्वागत सत्कार हेतु आभारी हूँ. इंदर जी की विशेष रूप से आभारी हूँ कि उन्होंने जिस तत्परता से ताजमहल दिखाया वह अन्य किसी भी प्रकार संभव नहीं था. जिस शीघ्रता से भाग-भागकर और जिस पूर्णता से ताजमहल के विभिन्न पक्षों की व्याख्या की वह तो बस सुरों के राजा इन्द्र के ही वश की बात थी. सराहना के शब्द कम पड़ रहे हैं.

डॉ. नरेन्द्र कोहली जी, मधुरिमा जी व उनके परिवार से मिलन सदा की भाँति ही सुखद रहा. सभी की आत्मीयता के ठाकुर साहब व मैं दोनों ही हृदय से आभारी हैं.

दि गौड़संस टाइम्स के श्री गौड़ व मानवेन्द्र कुमार जी की आभारी हूँ जिन्होंने अपने समाचार पत्रों में मेरी रचनाएँ प्रकाशित कीं.

साहित्य अकादमी में डॉ. विश्वनाथ तिवारी जी व डॉ. ब्रजेन्द्र त्रिपाठी जी का सान्निध्य साहित्यिक चर्चा हेतु बड़ा आनंददायी रहा.

डॉ. श्याम सखा श्याम ने अपनी कविताओं से अभिभूत किया. उनसे साक्षात् मिलन व कवित्त भरी फ़ोन वार्ता बड़ी ही सुखद रोचक थी.

डॉ. परमानंद पांचाल जी से चाय की चुसकियों के मध्य भाषा संबंधी गंभीर वार्ता अविस्मरणीय रहेगी.

बेलग्रेड में स्थापित अंतर्राष्ट्रीय रोमा सांस्कृतिक विश्वविद्यालय के कुलाधिपति पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि हैं और इसके कैनेडा चैप्टर के कोऑर्डिनेटर का पदभार मुझे सौंपा गया है. यह विश्वविद्यालय अपने किस्म का विश्व में एक अद्वितीय होगा जो मुख्यत: रोमा पीआइओ और भारतीय नॉमैडिक संस्कृति को सैद्धांतिक रूप से बढ़ावा देगा, साथ ही अप्लाइड मेथोडोलॉजी तथा कला और संगीत के उन्नयन में भी सहायक होगा.

जहाँ आप सभी शुभेच्छुकों की शुभेच्छा से मेरी दो पुस्तकों 'चिन्तन के धागों में कैकेयी संदर्भ : श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण' शोध ग्रंथ एवं समसामयिक लेख-संग्रह 'आज का समाज' का इस वर्ष प्रकाशन हुआ है और पिछले वर्ष प्रकाशित 'कैकेयी चेतना-शिखा' उपन्यास का द्वितीय संस्करण भी निकल गया है, वहीं 'चिन्तन के नव आयाम संदर्भ : तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस' शोध ग्रंथ व राम-कथा ग्रंथों पर आधारित उपन्यास 'लोक-नायक राम' का सृजन भी आरम्भ हो गया है.

अंत में निर्भया को श्रद्धांजलि देते हुये कहना चाहूँगी कि निर्भया ने निर्भय हो एक अग्निकण चमकाया है. एक चिंगारी भड़की जो अब शोला बन चुका है और इस शोले को हवा देकर दहकाने का काम आपका और हमारा, हम सबका है. इस अग्नि प्रज्वलित शोले को दहकाये रखने का दायित्व किसी वर्ग विशेष का नहीं है, किसी आयु विशेष का नहीं है, वरन् स्त्री, पुरुष दोनों का है. किशोर-किशोरियों से लेकर वृद्धों तक का है, सम्पूर्ण समाज का है. यह समस्या किसी एक की नहीं है. हम सभी को अपने काँधों पर इसका भार उठाना है. सभी काँधों को एक-दूसरे से जुड़ कर एक सशक्त दीवार बनना है. एक ऐसी दीवार बनना है जो ऐसे घृणित, कुत्सित विचार वाले व्यक्तियों से समाज की रक्षा कर सके. एक ऐसी अभेद्य दीवार जिसे ऐसा नृशंस कुकृत्य करने वाले व्यक्ति लाँघना, भेदना तो क्या, इसमें जरा-सी सेंध तक न लगा सकें, वरन् इससे टकराकर स्वयं ही नष्ट हो जायें.

एकता की एक ऐसी कड़ी हमें निर्मित करनी है जो कहीं से भी कमज़ोर न पड़े. युवा-वर्ग ने इस पाशविक नृशंसता के विरोध में, न केवल निर्भया की आत्मा की शांति के लिए, न केवल निर्भया के बलिदान को निरर्थक न होने देने के लिए, वरन् उसके बलिदान की सार्थकता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए, उसकी ज्योति की अखण्डता को बनाये रखने के लिए, साथ ही भविष्य में ऐसी घिनौनी हरक़त न हो, ऐसी आधार-शिला के निर्माण स्वरूप कार्य करना शुरू कर दिया है. इस कार्य में उनके साथ समाज के कई अंग जुड़ रहे हैं. अब आवश्यकता है इस नृशंस, पाशविक दुर्व्यवहार के विरुद्ध हर आवाज़ को बुलंदी पर पहुँचाने की जिससे ऐसा दु:साहस कोई कभी भी न कर सके.

यह सम्वेदना का समय है. निर्भया की पीड़ा को न केवल समझना, वरन् उस पीड़ा में आकण्ठ डूब, उसमें समाहित हो, उसे महसूस करने का समय है, उसे आत्मसात करने का समय है. इस पीड़ा का अहसास हम सबको होना चाहिये.

यद्यपि की मूलत: नारी कोमल है पर वह वीरांगना भी है, यह इतिहास ने कई बार सिद्ध किया है.

स्त्री, पुरुष और पुरुषार्थ की जननी है. आज माँ के दूध का कर्ज़ चुकाने का समय आ गया है. नारी होने के नाते नारी तो एक-दूसरे से जुड़ेगी ही पर साथ ही समय आ गया है कि पुरुष वर्ग नारी के सम्मान की रक्षा में अपना पुरुषार्थ दिखाये. यह चुप बैठने का समय नहीं है, यह निष्क्रिय रहने का समय नहीं है, यह कर्म का समय है.

उठो, जागो, बढ़ो, समाज को नैतिकता के उस उच्च स्थान पर पहुँचाओ जहाँ इसे होना चाहिये. समाज की रक्षा का दायित्व समाज पर ही है.

नारी

अश्क़ हूँ
वक़्त की पलकों पे टिकी हूँ
लहर हूँ
सागर की बाँहों में थमी हूँ
शबनम हूँ
ज़मीं के आगोश में बसी हूँ
चिंगारी हूँ
शोला बन के भड़की हूँ.
किरण हूँ
सूरज में समायी हूँ
लता हूँ
तने के सहारे बढ़ी हूँ
नदी हूँ
कगार के बन्धन में बँधी हूँ
फूल हूँ
काँटों से उलझती हूँ.
कोमल हूँ
रूई के फ़ाहों में सहेजी जाती हूँ
धरती हूँ
अम्बर के चँदोवे तले फली-फूली हूँ
अबला हूँ
पुरुष की संरक्षता में रहती हूँ
नारी हूँ
पुरूष और पुरुषार्थ की जन्मदात्री हूँ
नारी हूँ
पुरूष और पुरुषार्थ की जन्मदात्री हूँ.

इन्हीं शब्दों के साथ निर्भया की आत्मा को शब्दांजलि, श्रद्धांजलि देते हुए,

सस्नेह,

स्नेह ठाकुर

मेरे प्यारे भारत

(मूल भाषा - रोमानी)

बैराम हलिति

भावानुवाद : पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि

तुम मेरे हृदय की कम्पन हो
मेरी आत्मा हो
प्राचीनतम देश हो
विश्व की पुरातन संस्कृति को समाए
धन-धान्य सम्पन्न
मेरी पितृ-भूमि,
तुम नहीं जानती
अपने बिछुड़े लालों का
भारतवंशियों का दर्द
यानि हमारा दर्द
जो इम्यून कर गया है हमें
गैस चैम्बरों की तपन सहते-सहते
जिनमें भून दिये गए थे
हमारे पूर्वज
फ़ासिस्ट हिटलर द्वारा.
प्रत्येक रोमा का सपना होता है
कि वह पितृ-ऋण से उऋण हो
पवित्र गंगा के देश
भारत की परिक्रमा कर.
पल-पल सोचते हैं हम
तुम्हारे बारे में
गीत गाते हैं तुम्हारे दुनियाँ-भर में.
बसे हो तुम
हिमालय से हिंदुकुश तक
हमारे प्राणों में.
मेरे भारत
तुम हृदय हो मेरा
अविनाशी आत्मा हो
और देखो मर-मर कर जीवित हैं
हम अपने कोसोव में आज भी!

सामाजिक परिवर्तन और अनुवाद

डॉ. आर.पी. सिंह

विश्व परिदृश्य में आज अनुवाद एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं व्यावहारिक विधा के रूप में स्थापित होने के साथ-साथ विश्व संस्कृति और सभ्यता का भी पर्याय बन चुका है। परिणामस्वरूप अनुवाद अब न केवल वैज्ञानिक, व्यावसायिक, अनुवाद और भाषा-अध्यापकों के अध्ययन और शोध का विषय है वरन् आधुनिक प्रशासक तथा कूटनीतिज्ञों द्वारा भी राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय संबंधों के परिप्रेक्ष्य में अनुवाद की भूमिका का गहन अध्ययन आरंभ हो चुका है। विश्व के कुटुंब के समान सीमित होने के फलस्वरूप सांस्कृतिक आदान-प्रदान से सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में अत्यधिक तेजी आई है। समाज में सतत् परिवर्तन की यह प्रक्रिया कुछ बाह्य तथा आंतरिक कारणों के आधार पर कभी धीमी तथा कभी तीव्र हो जाती है। सामाजिक परिवर्तन के ये प्रमुख कारक हैं—सांस्कृतिक आदान-प्रदान, आर्थिक विकास तथा राजनीतिक परिवर्तन आदि। इन कारकों ने आदिकाल से ही मानव समाज को प्रभावित किया है। समाज को सामूहिक रूप से प्रभावित करने से पूर्व ये कारक अनिवार्यत: समाज की इकाई अर्थात व्यक्ति को प्रभावित करते हैं। व्यक्ति और साहित्य का संबंध बहुत आत्मीय है। जहाँ एक ओर साहित्य व्यक्ति के सुख-दुख, क्रियाकलापों तथा अभिव्यक्ति का दर्पण है, वहीं दूसरी ओर यह समाज को भी प्रभावित करता है। दूसरे शब्दों में, व्यक्ति की अभिव्यक्ति साहित्य के रूप में समाज तक पहुँच कर उसे उद्वेलित करती है। साहित्य के द्वारा ही ज्ञान-विज्ञान सामान्यजन तक पहुँचता है। ज्ञान-विज्ञान जैसे ही लोकभाषा में उपलब्ध होता है, जन-सामान्य जागरूक होकर सांस्कृतिक तथा वैचारिक आदान-प्रदान की प्रक्रिया का अंग बन जाता है। यही सांस्कृतिक तथा वैचारिक आदान-प्रदान अंतत: सामाजिक परिवर्तन का महत्त्वपूर्ण कारक बन जाता है। अत: विभिन्न श्रोतों से ज्ञान-विज्ञान को जन-सामान्य तक पहुँचाने में अनुवाद की अत्यंत महत्त्वपूर्ण आवश्यकता को देखते हुए इस दृष्टि से इसकी भूमिका के अध्ययन की अत्यधिक ज़रूरत है।

साहित्य समाज सापेक्ष होता है और साहित्य और अनुवाद का संबंध भी परंपरागत है। सभ्यता के आरंभ से ही मानव ने अनुवाद का सहारा लिया है। यदि भाषा के विकास से पूर्व अनुवाद विचारों के मूक आदान-प्रदान के रूप में मौजूद रहा तो कालांतर में भाषिक अनुवाद के रूप में स्थापित हुआ। इस प्रकार मानव आदिकाल से ही अनुवाद का सहारा लेकर ज्ञान-विज्ञान को देश-काल की सीमा से निकालकर सार्वभौमिकता प्रदान करता रहा है। प्राचीन वैदिक-संस्कृत साहित्य तथा ग्रीक साहित्य की टीकाएँ इसका प्रमाण हैं। विश्व का प्राचीनतम प्राप्त अनुवाद दूसरी शताब्दी ई. पूर्व का है, जो रोजेटा प्रस्तर पर है। इसमें हीरो ग्लाइफिक तथा दर्मोतिक लिपियों में मिश्री इतिहास और संस्कृति संबंधी सामग्री तथा उसका यूनानी भाषा में अनुवाद है (डॉ. भोलानाथ तिवारी : अनुवाद-विज्ञान)। इन प्राचीनतम भाषाओं/संस्कृतियों का साहित्य एवं दर्शन संपूर्ण विश्व को अनुवाद के ही माध्यम से प्राप्त हुआ। अनुवाद ने विभिन्न संस्कृतियों के मध्य आदान-प्रदान के क्रम को सतत् एवं जीवंत बनाए रखा है। वास्तव में 'अनुवाद ही वह माध्यम है जो व्यक्ति को पर-राष्ट्रों की सभ्यताओं, संस्कृति और रहन-सहन से परिचित कराता है (डॉ. आलोक कुमार रस्तोगी, १९८४, पृ. १७)' और संप्रेषण तथा संपर्क का अत्यंत कारगर माध्यम है। आज अनुवाद के माध्यम से विश्व के किसी भी कोने में घटित घटना अथवा नवीनतम अनुसंधान/अन्वेषण की सूचना तत्काल सर्वव्यापक हो जाती है।

मध्यकाल तक प्राय: संपूर्ण यूरोप पर पोप के कैथोलिक चर्च का धार्मिक आधिपत्य था और बाइबिल का अनुवाद वर्जित था। परंतु ब्रिटिश शासकों द्वारा रोम के चर्च से संबंध विच्छेद करते ही मानो सामाजिक परिवर्तन के नये दौर का सूत्रपात हुआ। जर्मनी और ब्रिटेन में बाइबिल के अनुवाद के प्रयास शुरू हुए तथा ग्रीक साहित्य की प्राचीन पांडुलिपियों का भी अनुवाद किया गया। इन ग्रंथों के अनुवादकों ने सामाजिक परिवर्तन में अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। उन्होंने बाइबिल को जन-सामान्य की भाषा में उपलब्ध कराकर सभी को उसके अध्ययन का अवसर प्रदान

किया। इसी के परिणामस्वरूप इंग्लैंड में 'चर्च ऑफ इंग्लैंड' की स्थापना हुई तथा कैथोलिकों के भारी विरोध के बावजूद, प्रोटेस्टेंट मत संपूर्ण विश्व में, फैलने में सफल रहा। इरैसमस और मार्टिन लूथर आदि के प्रयासों ने जर्मनी को पोप तथा कैथोलिक रूढ़ियों से मुक्ति दिलाई। इन घटनाक्रमों से प्रेरित होकर ईसाई मतानुयाई बाइबिल के अनुवाद विभिन्न भाषाओं में प्रस्तुत करने में जुट गए। परिणामस्वरूप बाइबिल आज विश्व की सर्वाधिक भाषाओं में अनूदित पुस्तक है। बाइबिल के अनुवादों के कारण सोलहवीं-सत्रहवीं शती तक ईसाई धर्म विश्व के अधिकांश भू-भाग पर फैलने में सफल रहा और विश्व के विभिन्न समाजों और संस्कृतियों के विघटन का भी कारण बना।

भारतीय भाषाओं से विदेशी अनुवादों की श्रृंखला में सबसे पहले दूसरी शती में संस्कृत से चीनी अनुवादों का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार छठी शताब्दी में संस्कृत के पंचतंत्र तथा बोधिसत्व का फारसी में अनुवाद हुआ। भारत में अँग्रेजी साम्राज्य की स्थापना के बाद प्राचीन भारतीय ज्ञान-विज्ञान के महत्त्व को स्वीकार करते हुए सन् १७७४ ई. में सर विलियम जोन्स ने बंगाल एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना करके प्राचीन पौर्वात्य धार्मिक, दार्शनिक तथा साहित्यिक कृतियों के रूपान्तर का मार्ग प्रशस्त किया। इस सोसाइटी ने प्राचीन भारतीय ज्ञान-विज्ञान की खोज, अनुवाद तथा प्रकाशन में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। इसी के तहत सन् १७९८ ई. में सर मॉनियर विलियम्स ने कालिदास की सुप्रसिद्ध कृति 'अभिज्ञान शाकुंतलम' का अँग्रेजी में अनुवाद प्रस्तुत किया। भारतीय धर्म एवं दर्शन से प्रभावित होकर पाश्चात्य विद्वानों ने भी भारतीय ग्रंथों का स्व-भाषाओं में अनुवाद आरंभ किया। मैक्समूलर, शॉपन हावर, श्लेगल, पिशेल आदि विद्वानों ने संस्कृत से जर्मन में अनुवाद किए और संस्कृत वैदिक तथा लौकिक साहित्य के अनुवाद से तुलनात्मक भाषा-विज्ञान का आरंभ हुआ। इन विद्वानों के प्रयासों से भारतीय आर्यभाषाओं और यूरोपीय आर्यभाषाओं की तात्विक एकता को प्रतिपादित करने के प्रयास आरंभ हुए। परिणामस्वरूप संपूर्ण विश्व के लिए भाषा वैज्ञानिक वर्गीकरण के नए मानदंड स्थापित हुए। इसी प्रकार नालंदा, तक्षशिला, मोहनजोदाड़ो और हड़प्पा की सभ्यता के इतिहास को समझने के लिए एक नई दृष्टि मिली। इसी तरह पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति ने पूर्वी समाज में भारी उथल-पुथल का भी सूत्रपात किया। साहित्य के क्षेत्र में अँग्रेजी रोमांटिक काव्य ने अनुवाद के माध्यम से इटली, यूनान और फ्रांस से होकर एशिया में प्रवेश किया। यूरोप के इस रोमांटिक काव्य के प्रेरणादाताओं में महाकवि कालिदास का भी सम्मान सहित उल्लेख किया जाता है। इसी प्रकार इन रोमांटिक कवियों ने दाराशिकोह कृत उपनिषदों के अरबी अनुवादों से फ्रांसीसी भाषा में किए गए अनुवादों को पढ़कर भी प्रेरणा प्राप्त की। कालिदास की अनूदित कृतियों का अध्ययन करके ही जर्मन कवि गेटे ने कालिदास की शकुंतला को संबोधित करके कविता लिखी। यह तथ्य भी मात्र संयोग नहीं है कि प्राय: विश्व की सभी प्रमुख भाषाओं में रोमियो-जूलियट, हीर-रांझा, लैला-मजनूं जैसी कथाएँ पाई जाती हैं। ये कथाएँ प्रत्यक्षत: अनुवाद के माध्यम से विभिन्न संस्कृतियों के मध्य आदान-प्रदान का प्रतीक हैं।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, धार्मिक प्रचार-प्रसार में धर्मग्रंथों के अनुवाद की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। वेद, बाइबिल, कुरान, गीता, उपनिषद तथा बौद्ध और जैन धार्मिक गंथों का संपूर्ण विश्व पर प्रभाव दिखाई देता है। प्रख्यात पश्चिम आलोचक टी.एस. इलियट बौद्ध और उपनिषदीय ज्ञान-परंपरा से प्रभावित एवं प्रेरित दिखाई देते हैं। इसी प्रकार कांटे, हीगल, नीत्से और सार्त्र की कृतियों में भारतीय दर्शन का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

भारतवर्ष में नवजागरण की चेतना को प्रवाहित करने में अनुवादकों की बहुत बड़ी भूमिका रही है। इसी माध्यम से हम फ्रांसीसी राज्य क्रांति, यूरोपीय उपनिवेशवाद, अमरीकी पूँजीवाद तथा साम्यवाद जैसी घटनाओं एवं युगांतरकारी शक्तियों से परिचित हुए। इन शक्तियों/घटनाओं ने संपूर्ण विश्व में सामाजिक परिवर्तन में क्या भूमिका अदा की, इस तथ्य से सभी परिचित हैं। नवीन सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक आंदोलनों ने न केवल मध्ययुगीन जड़ता और रूढ़िवादिता को समाप्त करने में सहयोग दिया वरन समाज में नव-चेतना का भी संचार किया। हमारे देश में उन्नीसवीं सदी के दौरान भारतेन्दु युग के प्राय: सभी साहित्यकार अनुवादक भी रहे हैं। 'स्वतंत्रता से पूर्व लेखन और अनुवाद को अलग-अलग (विधा) नहीं माना जाता था। बड़े-बड़े नामी लेखक मौलिक लेखन के साथ-साथ अनुवाद भी

करते थे। लेखन उनके हृदय की धड़कन थी और अनुवाद उनकी प्रेरणा (गार्गी गुप्त : अनुवाद, १९८६, पृ. ३)'। वास्तव में इस काल के साहित्य का प्रमुख लक्ष्य जन-मानस में ऐसा परिवर्तन लाना था जो देश की स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त कर सके। इस कार्य हेतु वे अनुवाद और सृजन दोनों को समान महत्त्व देते थे। इसी दौरान शेक्सपीयर के नाटकों का काफी बड़ी संख्या में अनुवाद हुआ। यह अनुवाद केवल स्वान्त: सुखाय की भावना से ही प्रेरित नहीं था वरन् नव-जागरण और नवोन्मेष की भावना से ओतप्रोत शेक्सपीयर का यह साहित्य मानव को रूढ़ियों से मुक्त होने की प्रेरणा देता था। इसी प्रकार चेकोस्लोवाकिया के लेखक वित्सेंत्सलेस्नी ने टैगोर की कृतियों का चेक में अनुवाद प्रस्तुत करके दोनों देशों की संस्कृतियों को निकट लाने का प्रयास किया।

अनुवाद का महत्त्व भारत जैसे बहुभाषा-भाषी तथा नाना-संस्कृतियों के देश में, जहाँ कोस-कोस पर पानी बदले, आठ कोस पर बानी, की कहावत चरितार्थ होती है, में और भी अधिक है। क्योंकि संप्रेषण और संपर्क के माध्यम के रूप में अनुवाद की विधा का प्रयोग करके विभिन्न क्षेत्रों और संस्कृतियों के लोगों को निकट लाने में सहायता मिलती है। 'भारत के भाषा वैज्ञानिक सर्वेक्षण में भारतवर्ष की १७९ भाषाओं एवं ५५४ बोलियों का उल्लेख है (डॉ. डी.पी. पटनायक, १९९४, पृष्ठ २७)'। केवल संविधान की आठवीं अनुसूची में ही २२ राष्ट्रीय भाषाओं का उल्लेख है। इस जटिल भाषागत परिवेश में अनुवाद का महत्त्व और उसकी अपरिहार्यता और भी अधिक हो जाती है। भारतीय भाषाओं में अनुवादों की श्रृंखला में बीसवीं शती के दौरान बंकिम चंद्र, शरत चंद्र, माइकेल मधुसूदन दत्त और रवीन्द्र नाथ की बंगला कृतियों का हिंदी में अनुवाद, मराठी लेखकों हरिनारायण आप्टे, खांडेकर के हिंदी में अनुवाद तथा एम.एन. सत्यार्थी और वी. वर्मा द्वारा बंगला से मलयालम में अनुवाद उल्लेखनीय हैं।

पाश्चात्य साहित्य तथा ज्ञान-विज्ञान ने अनुवाद के माध्यम से पौर्वात्य संस्कृति पर अपना प्रभाव डाला जिसके रचनात्मक और नकारात्मक प्रभाव बुद्धिजीवियों की चर्चा का विषय रहे हैं। यद्यपि यह माना जाता है कि पाश्चात्य संस्कृति के आक्रमण ने भारतीय संस्कृति को हानि पहुँचाई है और भारतीय समाज को विघटन की ओर अग्रसर किया है, तथापि सामाजिक परिवर्तन के घटक के रूप में अनुवाद के महत्त्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। सौ वर्ष से भी पूर्व भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सामाजिक परिवर्तन में अनुवाद की भूमिका के महत्त्व को समझा था (डॉ. रीता रानी पालीवाल : अनुवाद, १९८६, पृष्ठ ३०)। उनकी निम्न पंक्तियों से अनुवाद का महत्त्व उद्घाटित होता है-

''पै सब विद्या की कहूँ होई जुपै अनुवाद।
निज भाषा में तां सबै या को लैहैं स्वाद॥
जानि सकैं सब कुछ सबहि विविध कला के भेद।
वनै वस्तुकाल की इतै मिटै दीनता खेद॥''

निज भाषा में संपूर्ण ज्ञान-विज्ञान की उपलब्धि से ही दीनता का विनाश संभव है और यह अनुवाद से ही हो सकता है। स्वाधीनता संग्राम के दौरान गीता दर्शन ने संपूर्ण भारतीय जन-मानस को एकजुट बनाए रखा। यह गीता के अनुवाद का ही महत्त्व है। इसी प्रकार संपूर्ण भारतवर्ष में 'आसेतु हिमाचलम्' की सामासिक संस्कृति की स्थापना का श्रेय भी बहुत कुछ अनुवाद को देना उचित होगा।

शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का सबसे कारगर साधन है। शिक्षा के क्षेत्र में अनुवाद का महत्त्व स्वयं सिद्ध है। शिक्षा में अनुवाद के महत्त्व के संबंध में डॉ. जी.डी. सिंघल लिखते हैं—

''Since it is not possible for everyone to learn well more than one or two languages, it is absolutely essential that the scientific and technical literature of more advanced countries should be available to our university students in our languages.'' (Tips to translators)

सामाजिक परिप्रेक्ष्य में अनुवाद के तीन महत्त्वपूर्ण क्षेत्र हैं—कार्यालयीन अनुवाद, व्यावसायिक अनुवाद तथा साहित्यिक-सांस्कृतिक अनुवाद। तीनों प्रकार के अनुवाद न्यूनाधिक मात्रा में सामाजिक परिवर्तन की गति बढ़ाने के लिए उत्तरदायी हैं। कार्यालयीन अनुवाद का संबंध सरकारी पत्राचार से है। भारत की जटिल भाषिक स्थिति को

देखते हुए संविधान द्वारा राज्यों और राज्य तथा केन्द्र के बीच पत्राचार हेतु विभिन्न भाषाओं में अनुवाद की व्यवस्था की गई है। इस प्रक्रिया से न केवल विभिन्न भाषा-भाषियों के मध्य आदान-प्रदान संभव हुआ है वरन् बहुत से शब्द भारत की सभी भाषाओं में आमतौर पर प्रयोग में लाए जाने लगे हैं और सामाजिक संस्कृति के अंग बन गए हैं। इसी प्रकार व्यवसायों से संबंधित विज्ञापनों, प्रचार सामग्री आदि ने भी 'उपभोक्ता संस्कृति' के प्रभाव से नये-नये शब्द गढ़ने में सहायता दी है और कई बार विभिन्न भाषाओं के विशिष्ट शब्दों को सार्वभौम बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। साहित्यिक-सांस्कृतिक अनुवादों का समाज पर बहुत व्यापक प्रभाव पड़ा है। इस प्रकार के अनुवादों में क्लासिकल साहित्य की कृतियों के अलावा राजनीति दर्शन तथा विज्ञान से संबंधित श्रेष्ठ कृतियों का अनुवाद भी शामिल है। इन सभी प्रकार के अनुवादों ने सामाजिक परिवर्तन की गति को तीव्र करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अनुवाद को पाप, बेवफा-रूपसी, धोखा जैसे नामों से पुकारे जाने तथा अनुवाद की प्रामाणिकता, भाषा तथा सटीकता पर प्रश्नचिह्न लगाए जाने के बावजूद स्पष्ट है कि अनुवाद वर्तमान समाज की अत्यंत महत्त्वपूर्ण तथा आवश्यक विधा है। इसी कारण आज अनुवाद पर स्वतंत्र विधा के रूप में विचार किया जा रहा है। वर्तमान वैज्ञानिक तथा औद्योगिक उन्नति, संचार और सूचना क्रांति तथा विश्व-अर्थव्यवस्था के युग में अनुवाद और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है। टैक्नोलॉजी तथा सूचना के क्षेत्र में प्रत्येक राष्ट्र और समाज शीघ्रातिशीघ्र उन्नति के लिए प्रयासरत है। 'जो पहले आए सो पाए' के प्रतिस्पर्धात्मक युग में यह अनिवार्य हो गया है कि विभिन्न भाषाओं में तुरंत अनुवाद की व्यवस्था उपलब्ध हो। आधुनिक सामाजिक व्यवस्था में त्वरित गति से अनुवाद के महत्त्व को देखते हुए कंप्यूटरीकृत अनुवाद के क्षेत्र में भी अनुसंधान किए जा रहे हैं। यह इस बात का प्रतीक है कि समाज पर अनुवाद के प्रभाव का अध्ययन एक महत्त्वपूर्ण विषय है और सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया तेज करने में अनुवाद की महती भूमिका है।

संदर्भ सूची

Karunakaran K., M. Jayakumar, (ed) (1988). Translation as synthesis, a search for a new gestalt, Bahri publication, New Delhi

प्रो. सिंह, सूरजभान (१९९१), हिंदी भाषा संदर्भ और संरचना, दिल्ली

Dr. Koul, O.N. (ed) (1994), Language Development and Administration, Creative, New Delhi

डॉ. रस्तोगी, आलोक कुमार (१९८४), हिंदी में व्यावहारिक अनुवाद, जीवन ज्योति, दिल्ली

चतुर्वेदी मा.गो., कृष्ण कुमार गोस्वामी, (सं.) (१९८६) अनुवाद-विविध आयाम, केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

Dr. Koul O.N., (ed) (1994), South Asian Language Review, Creative, New Delhi

डॉ. गुप्ता गार्गी, (सं.)(१९८६) अनुवाद, भारतीय अनुवाद परिषद, नई दिल्ली

सिंह, आर.पी. (२०१०), कार्यालयीन अनुवाद समस्या और समाधान.

संचरण के गीत मत रुकना

डॉ. नरेश कात्यायन

संचरण के गीत मत रुकना
आजकल ठहरे हुए हैं लोग.

है इन्हें विश्राम का अभ्यास
पाँव में बाँधे हुए इतिहास
भूमि के पर्यंक में विश्रांत
शीश पर ओढ़े हुए आकाश.

आचरण के गीत मत थमना
दृष्टि से बहरे हुए हैं लोग.

नींद का वातावरण चहुँ ओर
टूटता है काँच जैसा शोर
है वृथा आलोक का अनुदान
थक गयी है चहचहाती भोर.

जागरण के गीत मत सोना
नींद के पहरे हुए हैं लोग.

हर तरफ़ है सिन्धु का विस्तार
तिर रहे हैं नीर में पतवार
नाव के टूटे हुए हैं पाट
चढ़ रहा है हर लहर में ज्वार.

संतरण के गीत मत बहना
डूब कर गहरे हुए हैं लोग.

घर

ब्रजेन्द्र त्रिपाठी

बहुत बार सोचा है
घर है क्या?
क्या यह घास, फूस, बाँस
या कि ईंट, सीमेंट, कांक्रीट, संगमरमर
से बनी मात्र एक निर्मिति है
अथवा एक जीवंत उपस्थिति है जड़, निष्प्राण
ज़रा सोचकर बताएँ
कि घर पदार्थवाची है या भाववाची?

जब हम कहते हैं या महसूस करते हैं
कि घर की याद आ रही है
तो क्या यह 'घर' नाम की उस
जड़ संरचना की स्मृति होती है
या कि उसके साथ उसमें रहने वाले लोग
उसका पूरा परिवेश, बीती हुई छोटी-बड़ी
तमाम घटनाएँ भी उसमें शामिल होती हैं.

चौथी कक्षा में पढ़ने वाले मेरे बेटे ने
कल मुझसे सवाल किया कि
घर किसे कहते हैं?
तो मैं उलझन में पड़ गया,
उसे कैसे समझाऊँ कि
घर क्या होता है?
वैसे घर का अर्थ तभी खुलता है
जब हम घर से दूर होते हैं
कैसा विरोधाभास है कि
जब हम घर से दूर होते हैं तभी
घर के निकट होते हैं.

अब इस समय नाम याद नहीं आ रहा
कि किसने कहा था कि
घर लौटने के लिए होता है
कितनी बड़ी होती होगी उनकी पीड़ा
जिनके कोई घर नहीं होता अथवा
जिन्हें घर से बेदख़ल कर दिया जाता है
वे तो लौट भी नहीं सकते.

कभी-कभी घर होता है
एक सपना
जिसे हम तामीर करना चाहते हैं
पर कर नहीं पाते
हवा के एक तेज़ झोंके से जैसे बिखर जाएँ
चिड़िया द्वारा चुन-चुनकर जोड़े गए तिनके
वैसे ही बिखर जाता है
घर का सपना
और घर सपना ही बना रहता है.

क्या आपको कभी ऐसा नहीं लगा
कि घर एक सेतु भी है
जो हमारे वर्तमान को अतीत से जोड़ता है
आधुनिकता कों परंपरा से?
यह कहना भी ग़लत नहीं होगा कि
घर अपने आप में एक परंपरा है.

मित्रों!
घर का वास्तविक अर्थ
आपको शब्दकोशों में नहीं मिलेगा
इसका अर्थ तो अनुभव की आँच में ही खुलेगा
जितने ही अनुभव-परिपक्व होते जाएँगे आप
घर के नए-नए अर्थों से परिचित होते जाएँगे.

अब ये भी तो मुझे नहीं मालूम
कि मेरी बातें
आपके दिल में घर कर भी रही हैं या नहीं!

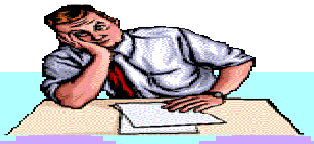

रश्मिद्वार खोलें

डॉ. सुमेर सिंह 'शैलेश'

मौन हुये गीत के पखेरू अन्तर की मृदुता को तौलें
छंदों के रश्मिद्वार खोलें.

पातों-से हिलते विश्वास ये दूरियाँ सहेजती हवाएँ
उपचारी देशों की व्यथा लिए अर्थहीन शब्द की दवाएँ
ओठों से रूठी मुस्कान को पलकों की कोर से सँजो लें
छंदों के रश्मिद्वार खोलें.

विद्रोही छेनी से मान किये स्वयं को तराशती शिलाएँ
बर्फ हुई ढेर-सी उदासी को गर्म आँच देकर पिघलाएँ
घूँट-घूँट विष को भी पीकर अमृत के गाँव तलक हो लें
छंदों के रश्मिद्वार खोलें.

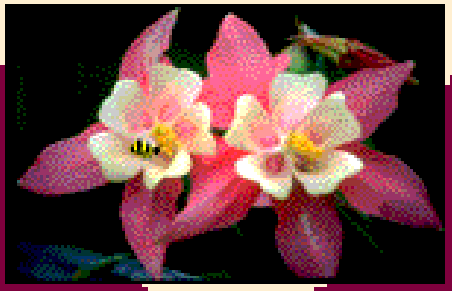

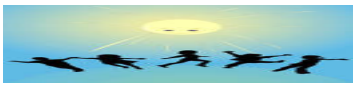

शरणागत

वृंदावनलाल वर्मा

रज्जब कसाई अपना रोजगार करके ललितपुर लौट रहा था। साथ में स्त्री थी, और गाँठ में दो सौ-तीन सौ की बड़ी रकम। मार्ग बीहड़ था, और सुनसान। ललितपुर काफी दूर था, बसेरा कहीं न कहीं लेना ही था; इसलिए उसने मड़पुरा नामक गाँव में ठहर जाने का निश्चय किया। उसकी पत्नी को बुखार हो आया था, रकम पास में थी, और बैलगाड़ी किराए पर करने में खर्च ज्यादा पड़ता, इसलिए रज्जब ने उस रात आराम कर लेना ही ठीक समझा।

परंतु ठहरता कहाँ? जात छिपाने से काम नहीं चल सकता था। उसकी पत्नी नाक और कानों में चाँदी की बालियाँ डाले थी, और पैजामा पहने थी। इसके सिवा गाँव के बहुत से लोग उसको पहचानते भी थे। वह उस गाँव के बहुत-से कर्मण्य और अकर्मण्य ढोर खरीद कर ले जा चुका था।

अपने व्यवहारियों से उसने रात भर के बसेरे के लायक स्थान की याचना की। किसी ने भी मंजूर न किया। उन लोगों ने अपने ढोर रज्जब को अलग-अलग और लुके-छुपे बेचे थे। ठहरने में तुरंत ही तरह-तरह की खबरें फैलती, इसलिए सबों ने इन्कार कर दिया।

गाँव में एक गरीब ठाकुर रहता था। थोड़ी-सी जमीन थी, जिसको किसान जोते हुए थे। जिसका हल-बैल कुछ भी न था। लेकिन अपने किसानों से दो-तीन साल का पेशगी लगान वसूल कर लेने में ठाकुर को किसी विशेष बाधा का सामना नहीं करना पड़ता था। छोटा-सा मकान था, परंतु उसके गाँववाले गढ़ी के आदरव्यंजक शब्द से पुकारा करते, और ठाकुर को डरके मारे 'राजा' शब्द संबोधन करते थे।

शामत का मारा रज्जब इसी ठाकुर के दरवाजे पर अपनी ज्वरग्रस्त पत्नी को ले कर पहुँचा।

ठाकुर पौर में बैठा हुक्का पी रहा था। रज्जब ने बाहर से ही सलाम कर के कहा 'दाऊजू, एक बिनती है।'

ठाकुर ने बिना एक रत्ती-भर इधर-उधर हिले-डुले पूछा - "क्या?"

रज्जब बोला - "दूर से आ रहा हूँ। बहुत थका हुआ हुँ। मेरी औरत को जोर से बुखार आ गया है। जाड़े में बाहर रहने से न जाने इसकी क्या हालत हो जायगी, इसलिए रात भर के लिए कहीं दो हाथ जगह दे दी जाय।"

"कौन लोग हो?" ठाकुर ने प्रश्न किया।

"हूँ तो कसाई।" रज्जब ने सीधा उत्तर दिया। चेहरे पर उसके बहुत गिड़गिड़ाहट थी।

ठाकुर की बड़ी-बड़ी आँखों में कठोरता छा गई। बोला - "जानता है, यह किसका घर है? यहाँ तक आने की हिम्मत कैसे की तूने?"

रज्जब ने आशा-भरे स्वर में कहा - "यह राजा का घर है, इसलिए शरण में आया हुआ है।"

तुरंत ठाकुर की आँखों की कठोरता गायब हो गई। जरा नरम स्वर में बोला - "किसी ने तुमको बसेरा नहीं दिया?"

"नहीं महाराज," रज्जब ने उत्तर दिया - "बहुत कोशिश की, परंतु मेरे खोटे पेशे के कारण कोई सीधा नहीं हुआ।" वह दरवाजे के बाहर ही एक कोने से चिपट कर बैठ गया। पीछे उसकी पत्नी कराहती, काँपती हुई गठरी-सी बन कर सिमट गई।

ठाकुर ने कहा- "तुम अपनी चिलम लिए हो?"

"हाँ, सरकार।" रज्जब ने उत्तर दिया।

ठाकुर बोला- "तब भीतर आ जाओ, और तमाखू अपनी चिलम से पी लो। अपनी औरत को भीतर कर लो। हमारी पौर के एक कोने में पड़े रहना।

जब वह दोनों भीतर आ गए, तो ठाकुर ने पूछा - "तुम कब यहाँ से उठ कर चले जाओगे?" जवाब मिला- "अँधेरे में ही महाराज। खाने के लिए रोटियाँ बाँधे हूँ इसलिए पकाने की जरूरत न पड़ेगी।"

"तुम्हारा नाम?"

"रज्जब।"

थोड़ी देर बाद ठाकुर ने रज्जब से पूछा - "कहाँ से आ रहे हो?" रज्जब ने स्थान का नाम बतलाया।

"वहाँ किसलिए गए थे?"

"अपने रोजगार के लिए।"

"काम तुम्हारा बहुत बुरा है।"

"क्या करूँ, पेट के लिए करना ही पड़ता है। परमात्मा ने जिसके लिए जो रोजगार नियत किया है, वहीं उसको करना पड़ता है।"

"क्या नफा हुआ?" प्रश्न करने में ठाकुर को जरा संकोच हुआ, और प्रश्न का उत्तर देने में रज्जब को उससे बढ़ कर।

रज्जब ने जवाब दिया- "महाराज, पेट के लायक कुछ मिल गया है। यों ही।" ठाकुर ने इस पर कोई जिद नहीं की।

रज्जब एक क्षण बाद बोला- "बड़े भोर उठ कर चला जाऊँगा। तब तक घर के लोगों की तबीयत भी अच्छी हो जायगी।"

इसके बाद दिन भर के थके हुए पति-पत्नी सो गए। काफी रात गए कुछ लोगों ने एक बँधे इशारे से ठाकुर को बाहर बुलाया। एक फटी-सी रजाई ओढ़े ठाकुर बाहर निकल आया।

आगंतुकों में से एक ने धीरे से कहा - "दाऊजू, आज तो खाली हाथ लौटे हैं। कल संध्या का सगुन बैठा है।"

ठाकुर ने कहा - "आज जरूरत थी। खैर, कल देखा जायगा। क्या कोई उपाय किया था?"

"हाँ", आगंतुक बोला - "एक कसाई रुपए की मोट बाँधे इसी ओर आया है। परंतु हम लोग जरा देर में पहुँचे। वह खिसक गया। कल देखेंगे। जरा जल्दी।"

ठाकुर ने घृणा-सूचक स्वर में कहा - "कसाई का पैसा न छुएँगे।"

"क्यों?"

"बुरी कमाई है।"

"उसके रुपए पर कसाई थोड़े लिखा है।"

"परंतु उसके व्यवसाय से वह रुपया दूषित हो गया है।"

"रुपया तो दूसरों का ही है। कसाई के हाथ आने से रुपया कसाई नहीं हुया।"

"मेरा मन नहीं मानता, वह अशुद्ध है।"

"हम अपनी तलवार से उसको शुद्ध कर लेंगे।"

ज्यादा बहस नहीं हुई। ठाकुर ने सोच कर अपने साथियों को बाहर का बाहर ही टाल दिया।

भीतर देखा कसाई सो रहा था, और उसकी पत्नी भी। ठाकुर भी सो गया।

सबेरा हो गया, परंतु रज्जब न जा सका। उसकी पत्नी का बुखार तो हल्का हो गया था, परंतु शरीर भर में पीड़ा थी, और वह एक कदम भी नहीं चल सकती थी।

ठाकुर उसे वहीं ठहरा हुआ देख कर कुपित हो गया। रज्जब से बोला - "मैंने खूब मेहमान इकट्ठे किए हैं। गाँव भर थोड़ी देर में तुम लोगों को मेरी पौर में टिका हुआ देख कर तरह-तरह की बकवास करेगा। तुम बाहर जाओ इसी समय।"

रज्जब ने बहुत विनती की, परंतु ठाकुर न माना। यद्यपि गाँव-भर उसके दबदबे को मानता था, परंतु अव्यक्त लोकमत का दबदबा उसके भी मन पर था। इसलिए रज्जब गाँव के बाहर सपत्नीक, एक पेड़ के नीचे जा बैठा, और हिंदू मात्र को मन-ही-मन कोसने लगा।

उसे आशा थी कि पहर - आध पहर में उसकी पत्नी की तबीयत इतनी स्वस्थ हो जायगी कि वह पैदल यात्रा कर सकेगी। परंतु ऐसा न हुआ, तब उसने एक गाड़ी किराए पर कर लेने का निर्णय किया।

मुश्किल से एक चमार काफी किराया ले कर ललितपुर गाड़ी ले जाने के लिए राजी हुआ। इतने में दोपहर हो गई। उसकी पत्नी को जोर का बुखार हो आया। वह जाड़े के मारे थर-थर काँप रही थीं, इतनी कि रज्जब की हिम्मत उसी समय ले जाने की न पड़ी। गाड़ी में अधिक हवा लगने के भय से रज्जब ने उस समय तक के लिए यात्रा को स्थगित कर दिया, जब तक कि उस बेचारी की कम से कम कँपकँपी बंद न हो जाय।

घंटे-डेढ़-घंटे बाद उसकी कँपकँपी बंद तो हो गई, परंतु ज्वर बहुत तेज हो गया। रज्जब ने अपनी पत्नी को गाड़ी में डाल दिया और गाड़ीवान से जल्दी चलने को कहा।

गाड़ीवान बोला - "दिन भर तो यहीं लगा दिया। अब जल्दी चलने को कहते हो।"

रज्जब ने मिठास के स्वर में उससे फिर जल्दी करने के लिए कहा।

वह बोला - "इतने किराए में काम नहीं चलेगा, अपना रुपया वापस लो। मैं तो घर जाता हूँ।"

रज्जब ने दाँत पीसे। कुछ क्षण चुप रहा। सचेत हो कर कहने लगा - "भाई, आफत सबके ऊपर आती है। मनुष्य मनुष्य को सहारा देता है, जानवर तो देते नहीं। तुम्हारे भी बाल-बच्चे हैं। कुछ दया के साथ काम लो।"

कसाई को दया पर व्याख्यान देते सुन कर गाड़ीवान को हँसी आ गई। उसको टस से मस न होता देख कर रज्जब ने और पैसे दिए। तब उसने गाड़ी हाँकी।

पाँच-छः मील चले के बाद संध्या हो गई। गाँव कोई पास में न था। रज्जब की गाड़ी धीरे-धीरे चली जा रही थी। उसकी पत्नी बुखार में बेहोश-सी थी। रज्जब ने अपनी कमर टटोली, रकम सुरक्षित बँधी पड़ी थी।

रज्जब को स्मरण हो आया कि पत्नी के बुखार के कारण अंटी का कुछ बोझ कम कर देना पड़ा है - और स्मरण हो आया गाड़ीवान का वह हठ, जिसके कारण उसको कुछ पैसे व्यर्थ ही दे देने पड़े थे। उसको गाड़ीवान पर क्रोध था, परंतु उसको प्रकट करने की उस समय उसके मन में इच्छा न थी।

बातचीत करके रास्ता काटने की कामना से उसने वार्तालाप आरंभ किया -

"गाँव तो यहाँ से दूर मिलेगा।"

"बहुत दूर, वहीं ठहरेंगे।"

"किसके यहाँ?"

"किसी के यहाँ भी नहीं। पेड़ के नीचे। कल सबेरे ललितपुर चलेंगे।"

"कल को फिर पैसा माँग उठना।"

"कैसे माँग उठूँगा? किराया ले चुका हूँ। अब फिर कैसे माँगूँगा?"

"जैसे आज गाँव में हठ करके माँगा था। बेटा, ललितपुर होता, तो बतला देता !"

"क्या बतला देते? क्या सेंत-मेंत गाड़ी में बैठना चाहते थे?"

"क्यों बे, क्या रुपया दे कर भी सेंत-मेंत का बैठना कहाता है? जानता है, मेरा नाम रज्जब है। अगर बीच में गड़बड़ करेगा, तो नालायक को यहीं छुरे से काट कर फेंक दूँगा और गाड़ी ले कर ललितपुर चल दूँगा।"

रज्जब क्रोध को प्रकट नहीं करना चाहता था, परंतु शायद अकारण ही वह भली भाँति प्रकट हो गया।

गाड़ीवान ने इधर-उधर देखा। अँधेरा हो गया था। चारों ओर सुनसान था। आस-पास झाड़ी खड़ी थी। ऐसा जान पड़ता था, कहीं से कोई अब निकला और अब निकला। रज्जब की बात सुन कर उसकी हड्डी काँप गई। ऐसा जान पड़ा, मानों पसलियों को उसकी ठंडी छूरी छू रही है।

गाड़ीवान चुपचाप बैलों को हाँकने लगा। उसने सोचा - गाँव आते ही गाड़ी छोड़ कर नीचे खड़ा हो जाऊँगा, और हल्ला-गुल्ला करके गाँववालों की मदद से अपना पीछा रज्जब से छुड़ाऊँगा। रुपए-पैसे भली ही वापस कर दूँगा, परंतु और आगे न जाऊँगा। कहीं सचमुच मार्ग में मार डाले !

गाड़ी थोड़ी दूर और चली होगी कि बैल ठिठक कर खड़े हो गए। रज्जब सामने न देख रहा था, इसलिए जरा कड़क कर गाड़ीवान से बोला - "क्यों बे बदमाश, सो गया क्या?"

अधिक कड़क के साथ सामने रास्ते पर खड़ी हुई एक टुकड़ी में से किसी के कठोर कंठ से निकला, "खबरदार, जो आगे बढ़ा।"

रज्जब ने सामने देखा कि चार-पाँच आदमी बड़े-बड़े लठ बाँध कर न जाने कहाँ से आ गए हैं। उनमें तुरंत ही एक ने बैलों की जुआरी पर एक लठ पटका और दो दाएँ-बाएँ आ कर रज्जब पर आक्रमण करने को तैयार हो गए।

गाड़ीवान गाड़ी छोड़ कर नीचे जा खड़ा हुआ। बोला - "मालिक, मैं तो गाड़ीवान हूँ। मुझसे कोई सरोकार नहीं।"

"यह कौन है?" एक ने गरज कर पूछा।

गाड़ीवान की घिग्घी बँध गई। कोई उत्तर न दे सका।

रज्जब ने कमर की गाँठ को एक हाथ से सँभालते हुए बहुत ही नम्र स्वर में कहा - "मैं बहुत गरीब आदमी हूँ। मेरे पास कुछ नहीं है। मेरी औरत गाड़ी में बीमार पड़ी है। मुझे जाने दीजिए।"

उन लोगों में से एक ने रज्जब के सिर पर लाठी उबारी। गाड़ीवान खिसकना चाहता था कि दूसरे ने उसको पकड़ लिया।

अब उसका मुँह खुला। बोला - "महाराज, मुझको छोड़ दो। मैं तो किराए से गाड़ी लिए जा रहा हूँ। गाँठ में खाने के लिए तीन-चार आने पैसे ही हैं।"

"और यह कौन है? बतला।" उन लोगों में से एक ने पूछा।

गाड़ीवान ने तुरंत उत्तर दिया - "ललितपुर का एक कसाई।"

रज्जब के सिर पर जो लाठी उबारी गई थी, वह वहीं रह गई। लाठीवाले के मुँह से निकला - "तुम कसाई हो? सच बताओ !"

"हाँ, महाराज!" रज्जब ने सहसा उत्तर दिया - "मैं बहुत गरीब हुँ। हाथ जोड़ता हूँ मत सताओ। मेरी औरत बहुत बीमार है।"

औरत जोर से कराही ।

लाठीवाले उस आदमी ने अपने एक साथी से कान में कहा - "इसका नाम रज्जब है। छोड़ो। चलें यहाँ से।"

उसने न माना। बोला- "इसका खोपड़ा चकनाचूर करो दाऊजू, यदि वैसे न माने तो। असाई-कसाई हम कुछ नहीं मानते।"

"छोड़ना ही पड़ेगा," उसने कहा - "इस पर हाथ नहीं पसारेंगे और न इसका पैसा छुएँगे।"

दूसरा बोला- "क्या कसाई होने के डर से दाऊजू, आज तुम्हारी बुद्धि पर पत्थर पड़ गए हैं। मैं देखता हूँ!" और उसने तुरंत लाठी का एक सिरा रज्जब की छाती में अड़ा कर तुरंत रुपया-पैसा निकाल देने का हुक्म दिया। नीचे खड़े

उस व्यक्ति ने जरा तीव्र स्वर में कहा - "नीचे उतर आओ। उससे मत बोलो। उसकी औरत बीमार है।"

"हो, मेरी बला से," गाड़ी में चढ़े हुए लठैत ने उत्तर दिया - "मैं कसाइयों की दवा हूँ।" और उसने रज्जब को फिर धमकी दी।

नीचे खड़े हुए उस व्यक्ति ने कहा - "खबरदार, जो उसे छुआ। नीचे उतरो, नहीं तो तुम्हारा सिर चकनाचूर किए देता हूँ। वह मेरी शरण आया था।"

गाड़ीवाला लठैत झख-सी मार कर नीचे उतर आया।

नीचेवाले व्यक्ति ने कहा - "सब लोग अपने-अपने घर जाओ। राहगीरों को तंग मत करो।" फिर गाड़ीवान से बोला - "जा रे, हाँक ले जा गाड़ी। ठिकाने तक पहुँचा आना, तब लौटना, नहीं तो अपनी खैर मत समझियो। और, तुम दोनों में से किसी ने भी कभी, इस बात की चर्चा कहीं की, तो भूसी की आग में जला कर खाक कर दूँगा।"

गाड़ीवान गाड़ी ले कर बढ़ गया। उन लोगों में से जिस आदमी ने गाड़ी पर चढ़ कर रज्जब के सिर पर लाठी तानी थी, उसने क्षुब्ध स्वर में कहा - "दाऊजू, आगे से कभी आपके साथ न आऊँगा।"

दाऊजू ने कहा - "न आना। मैं अकेले ही बहुत कर गुजरता हूँ। परंतु बुंदेला शरणागत के साथ घात नहीं करता, इस बात को गाँठ बाँध लेना।"

जिन्दगी भी मुस्कुरा देगी

गोवर्धन यादव

प्रीत के गीत मुझे दे दो तो
मैं उम्र भर गाता रहूँ
प्रीत ही मुझे दे दो तो
मैं जिन्दगी भर सँवारता रहूँ

जब मैं तुम्हारी सरहद में आया था
याद करूँ तो कुछ याद न आया था
एक अजब ख़ामोशी व ख़ुमारी थी
जो मुझ पर अब तक छायी है

ख़ामोशी के राज मुझे दे दो
कि मैं चैन की बंसी बजाता रहूँ
गीत नये-नये गाता रहूँ
गीत नये-नये गुनगुनाता रहूँ

तुम तभी से अपने हो
जब चाँद तारे भी न थे
ये ज़मीं आसमाँ भी न थे
तुम तभी से साथ हमारे थे

गीतों के बदले जिन्दगी भी माँग लोगी
तो मुझे तनिक भी ग़म न रहेगा
क्योंकि मुझे मालूम है कि
गीतों के बहाने नयी ज़िन्दगी लेकर
तुम द्वार मेरे ज़रुर आओगी

उज्जैन : श्लोक से लोक तक की आस्था का केन्द्र महाकालेश्वर

डॉ. शैलेन्द्रकुमार शर्मा

अवन्तिकायां विहितावतारं मुक्तिप्रदानाय च सज्जनानाम्।
अकालमृत्योः परिरक्षणार्थं वंदे महाकालमहासुरेशम्॥

सुपूज्य और दिव्य द्वादश ज्योतिर्लिंगों में परिगणित उज्जयिनी के महाकालेश्वर की महिमा अनुपम है। सज्जनों को मुक्ति प्रदान करने के लिए ही उन्होंने अवंतिका में अवतार धारण किया है। ऐसे महाकाल महादेव की उपासना न जाने किस सुदूर अतीत से अकालमृत्यु से बचने और मंगलमय जीवन के लिए की जा रही है। शिव काल से परे हैं, वे साक्षात् कालस्वरूप हैं। उन्होंने स्वेच्छा से पुरुषरूप धारण किया है, वे त्रिगुणस्वरूप और प्रकृति रूप हैं। समस्त योगीजन समाधि अवस्था में अपने हृदयकमल के कोश में उनके ज्योतिर्मय स्वरूप का दर्शन करते हैं। ऐसे परमात्मारूप महाकालेश्वर ज्योतिर्लिंग से ही अनादि उज्जयिनी को पूरे ब्रह्माण्ड में विलक्षण महिमा मिली है। पुरातन मान्यता के अनुसार समूचे ब्रह्माण्ड में तीन लिंगों को सर्वोपरि स्थान मिला है – आकाश में तारकलिंग, पाताल में हाटकेश्वर और इस धरा पर महाकालेश्वर।

आकाशे तारकं लिंगं पाताले हाटकेश्वरम्।
भूलोके च महाकालोः लिंगत्रय नमोस्तुते॥

शिव की उपासना अनेक सहस्राब्दियों से चली आ रही है और शिवलिंग के रूप में उनका अर्चन संभवतः सबसे प्राचीन प्रतीकार्चन है। वैदिक वाङ्मय के रुद्र ही परवर्ती काल में शिव के रूप में लोक में बहुपूजित हुए, जो अघोर और फिर घोर से भी घोरतर रूप लिए थे। उज्जयिनी अति प्राचीनकाल से जुड़े दर्शन, पूजा पद्धति और कला परम्पराओं के विकास में इस क्षेत्र का विशिष्ट योगदान रहा है। शैव धर्म की चार धाराओं- शैव, कालानल, पाशुपत और कापालिक का संबंध न्यूनाधिक रूप से उज्जैन, ओंकारेश्वर, मंदसौर सहित समूचे मालवांचल से रहा है। पुराणों से संकेत मिलता है कि उज्जयिनी पाशुपतों की पीठ स्थली रही है। शंकर दिग्विजय के अनुसार यहाँ कापालिक निवास करते थे। महाकालेश्वर यहाँ के अधिष्ठाता देवता है। इनका ज्योतिर्लिंग दक्षिणामूर्ति होने से तांत्रिक साधना की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखता है। उज्जैन के महाकाल वन का तांत्रिक परम्परा में विशिष्ट स्थान है। स्कंदपुराण के अवंती खंड के अनुसार साधना की दृष्टि से अत्यंत उपयोगी पाँच स्थल-श्मशान, ऊषर, क्षेत्र, पीठ और वन यहीं उपलब्ध हैं-

श्मशानमूषरं क्षेत्रं पीठं तु वनमेव च।
पंचैकत्र न लभ्यंते महाकालवनाद् ऋते॥

प्राचीन मान्यता के अनुसार उज्जयिनी यदि नाभिदेश है तो भूलोक के प्रधान पूज्यदेव महाकाल हैं। सृष्टि का प्रारंभ उन्हीं से हुआ है- कालचक्रप्रवर्तको महाकालः प्रतापनः। वस्तुतः भगवान् महाकाल की प्रतिष्ठा और महिमा से जुड़े अनेक पौराणिक आख्यान मिलते हैं, जिनसे अवंती क्षेत्र में शैव धर्म की प्राचीनता के संकेत मिलते हैं । शिवपुराण के अनुसार सतयुग और त्रेतायुग के संधिकाल के प्रथम चरण में हिरण्याक्ष की विजययात्रा के दौरान उसके सेनापति दूषण ने अवंती पर आक्रमण किया था। उस समय उज्जयिनी में राजा चंद्रसेन का राज्य था। पुरोहितों ने इस संकट के निवारण के लिए भगवान् शिव की पूजा की सलाह दी, तब राजा ने स्वयं शिवजी का चमत्कार एक ग्वाले की शिवभक्ति में प्रत्यक्ष देखा। ग्वाला जहाँ शिव की पूजा किया करता था। वहीं वैदिक अनुष्ठानपूर्वक शिव मंदिर की स्थापना करवाई गई। संभवतः वही भगवान महाकालेश्वर के देवालय की स्थापना का प्रथम दिन था। विभिन्न युगों की गणना के

आधार पर यह समय आज से करीब ग्यारह हजार नौ सौ वर्ष पहले अनुमानित है। त्रेता युग में सम्राट भरत के मित्र चित्ररथ अवंती क्षेत्र के राजा थे। भरत की चौथी पीढी के राजा रन्तिदेव ने इस क्षेत्र को अपने राज्य में मिला लिया था। त्रेतायुग में अयोध्या में राजा हरिद्गचंद्र हुए थे, उनसे कुछ ही समय बाद महेश्वर (माहिष्मती) में हैहयवंश में कार्तवीर्य अर्जुन जैसे प्रतापी सम्राट हुए, जो सहस्रबाहु के नाम से प्रख्यात हैं। उन्हीं के सौ पुत्रों में से एक आवंत या अवंती थे, जिनके नाम पर यह क्षेत्र अवंती कहलाया। त्रेतायुग में राम के पुत्र कुश स्वयं महाकालेश्वर के दर्शन के लिए अवंतिका में आए थे।

पौराणिक मान्यताओं के अनुसार स्वयं भगवान राम और श्रीकृष्ण ने महाकालेश्वर का पूजन किया था। महाकालेश्वर की प्राचीनता को लेकर अनेक पौराणिक, साहित्यिक और अभिलेखीय प्रमाण उपलब्ध हैं, जो शैव साधना की दृष्टि से इस स्थान की महिमाशाली स्थिति को रेखांकित करते हैं। महाकाल स्वयं प्रलय के देवता हैं, इसीलिए उज्जयिनी सभी कल्पों तथा युगों में अस्तित्वमान रहने से 'प्रतिकल्पा' संज्ञा को चरितार्थ करती है। पुराणों का संकेत साफ है- 'प्रलयो न बाधते तत्र महाकालपुरी।' मृत्युलोक के स्वामी महाकाल इस नगरी के तब से ही अधिष्ठाता हैं, जब सृष्टि का समारंभ हुआ था। उपनिषदों एवं आरण्यक ग्रंथों से लेकर वराहपुराण तक आते-आते इस बात का स्पष्ट संकेत मिलता है कि महाकाल तो स्वयं भारतभूमि के नाभिदेश में स्थित हैं- 'नाभिदेशे महाकालस्तन्नाम्ना तत्र वै हरः... इत्येषा तैत्तिरीश्रुतिः।' महाकाल का उल्लेख ब्रह्माण्ड पुराण, अग्नि पुराण, शिव पुराण, गरुड़ पुराण, भागवत पुराण, लिंग पुराण, वामन पुराण, विष्णु पुराण, मत्स्य पुराण, भविष्य पुराण, सौर पुराण सहित अनेकानेक पुराण एवं प्राचीन ग्रंथों में सहज ही उपलब्ध है। भागवत में उल्लेख मिलता है कि श्रीकृष्ण, बलराम और मित्र सुदामा ने गुरु सांदीपनि के आश्रम में विद्याध्ययन पूर्ण कर स्वघर लौटने के पूर्व गुरुवर के साथ जाकर महाकाल की भक्ति भावनापूर्वक पूजा की थी। उन्होंने एक सहस्र कमल शिव जी के सहस्रनाम के साथ अर्पित किए थे।

पुराणकाल में तो महाकालेश्वर की विशिष्ट महिमा थी ही, पुराणोत्तर दौर में प्रद्योत युग, मौर्य युग, शुंग, शक, विक्रमादित्य, सातवाहन, गुप्त, हर्षवर्धन, प्रतिहार, परमार, मुगल, मराठा आदि सभी युगों में वे बहुलोकपूजित रहे हैं। विभिन्न युगों में उज्जैन में विकसित कला परम्पराएँ भी शैव धर्म के विविधायामी रूपांतर का साक्ष्य देती आ रही हैं।

सम्राट विक्रमादित्य की रत्नसभा के अनूठे रत्न महाकवि कालिदास (प्रथम शती ई. पू.) ने अपनी प्रिय नगरी उज्जयिनी और महाकालेश्वर मंदिर का वर्णन बड़े मनोयोग से किया है। उनके समय में यह पुण्य नगरी अपार वैभव और सौंदर्य से मंडित थी। इसीलिए वे इसे स्वर्ग के कांतिमान खण्ड के रूप में वर्णित करते हैं- 'दिवः कान्तिमत्खण्डमेकम्'। कालिदास के पूर्व भी यह नगरी अवन्ती या मालव क्षेत्र की प्रमुख नगरी थी ही, इसे राजधानी होने का भी गौरव मिला हुआ था। यहाँ सम्राट का राजप्रसाद भी था, कालिदास ने जिसके महाकाल मंदिर से अधिक दूर न होने का संकेत किया है- 'असौ महाकालनिकेतनस्य वसन्नदूरे किल चन्द्रमौलेः।' उज्जयिनी के राजभवन और हवेलियाँ भी दर्शनीय थे, जिनके आकर्षण में मेघदूत को बाँधने की कोशिश स्वयं कालिदास ने की है।

कालिदास के समय उज्जयिनी शैव मत का प्रमुख केन्द्र थी। महाकवि के समय से शताब्दियों पूर्व से ही इस नगरी में शैव साधना एवं शैव स्थलों की प्रतिष्ठा रही थी। इसके अनेक पौराणिक साहित्यिक, पुरातात्त्विक एवं मुद्रा शास्त्रीय प्रमाण उपलब्ध हैं। महाकवि कालिदास ने भी शैव मत की प्रतिष्ठा की दृष्टि से उज्जयिनी की महिमा को विशेष तौर पर रेखांकित किया है। उनके काल में उज्जयिनी की पहचान महाकाल मंदिर और क्षिप्रा से जुड़ी हुई थी। लोकमानस में महाकाल की प्रतिष्ठा तीनों लोकों के स्वामी और चण्डी के पति के रूप में थी। उनका मंदिर घने वृक्षों से भरे-पूरे महाकाल वन के मध्य में था। वनवृक्षों की शाखाएँ बहुत ऊपर तक फैली हुई थीं। मंदिर का परिसर सुविस्तृत था, जिसके आँगन में सायंकाल को

महाकाल के अर्चन एवं संध्या आरती के बाद नृत्यांगनाओं का नर्तन होता था। उन नर्तकियों के पैरों की चाल के साथ-साथ मेखलाएँ झनझनाती रहती थीं। उनके हाथों में रत्न जटित हत्थियों वाले चँवर रहते थे। नर्तन-पूजन के पश्चात् वे मंदिर से बाहर निकलती थीं। मंदिर के अन्दर शिव-कथा पर आधारित प्रस्तर-शिल्प भी थे। महाकाल मंदिर में साँझ की पूजा विशेष महिमाशाली मानी जाती थी। उस समय नगाड़ों के गर्जन के साथ महाकालेश्वर की सुहावनी आरती होती थी। उधर महाकाल वन के वृक्षों पर साँझ की लालिमा छा जाती थी, जो श्रद्धालुओं को मोहित कर देती थी। कवीन्द्र रवीन्द्र ने भी इस प्रसंग को रेखांकित किया है-

महाकाल मंदिरेर माझे
तखन गंभीरमन्द्रे संध्यारति बाजे।

महाकाल की पूजा पद्धति का संकेत भी कालिदास साहित्य में प्राप्त होता है। रघुवंश तथा मेघदूत से ज्ञात होता है कि महाकाल के सुप्रसिद्ध मंदिर में पशुपति शिव की प्रतिमा रही। सन्ध्या के समय उस पर धूप आ जाने से ऐसा लगता है, मानो उसने गजचर्म पहन लिया हो। इससे स्पष्ट है कि मंदिर में महाकाल की प्रतिमा इस प्रकार प्रतिष्ठित थी कि उस पर संध्या का प्रकाश पड़ता था। या तो वह प्रतिमा बिना छत के देवायतन में प्रतिष्ठित थी अथवा पूर्व-पश्चिम में गर्भगृह ऐसा खुला था कि भीतर की प्रतिमा पर पूरी धूप आती रहती थी। मेघदूत का एक श्लोक तो स्पष्ट संकेत करता है कि महाकाल मंदिर में नृत्य करते शिवजी की अनेक भुजाओं वाली प्रमुख प्रतिमा थी जिसे भवानी भक्तिपूर्वक निहार रही हैं।

पश्चादुच्चैर्भुजतरुवनं मण्डलेनाभिलीनः
सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजपापुष्परक्तं दधानः।
नृत्यारम्भे हर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेहृणवां
शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्या॥

कालिदास नीललोहित से मुक्ति की कामना भी करते हैं। स्कन्दपुराण के अवन्तीखण्ड (अध्याय-२) में नीललोहित का स्वरूप दिया गया है। तदनुसार उसमें पाँच मुख, दस भुजा, पन्द्रह आँखें, साँप की यज्ञोपवीत, जटा, चन्द्र और सिंहचर्म का वस्त्र बताया गया है। यह रूप महाकाल पशुपति का नहीं है। नटराज शिव की उज्जैन से प्राप्त आठवीं शती की एक खण्डित प्रतिमा ग्वालियर में सुरक्षित है। किन्तु कालिदास से यह प्रतिमा सदियों बाद बनी। कालिदास के युग में महाकाल की प्रतिमा रही, यह बृहत्कथा के संस्करणों से भी पुष्ट होता है। उसमें एक व्यक्ति महाकाल प्रतिमा के घुटनों पर सिर टिकाकर रोता है। उसमें महाकाल के हाथों की भी चर्चा है। मेघदूत में शिवलिंग का संकेत तो नहीं मिलता है, किन्तु ज्योतिर्लिंग अवश्य रहा होगा। पौराणिक परम्परा इस बात की बार-बार पुष्टि करती है।

गुप्त और हर्षवर्धन युग (३३५-८४८ ई.) में भी उज्जयिनी शैव मत का एक प्रमुख केन्द्र रही। महाकवि वाण ने अपनी कादम्बरी में उल्लेख किया है कि यहाँ महाकाल स्वरूप में शिव की आराधना की जाती है। यहाँ शंकर के अनेक मंदिर थे तथा प्रमुख चौराहों पर भी शिवलिंग स्थापित थे। यहाँ पर आधिपत्य रखने वाले यशोवर्धन, हर्षवर्धन जैसे अनेक शासक शिव के उपासक थे। हर्षवर्धन किसी भी सैनिक अभियान के पूर्व नील-लोहित शिव की पूजा किया करता था। यहाँ शिव के साथ शक्ति की पूजा का भी समन्वय रहा है। गुप्त युग में महाकाल मंदिर अत्यंत प्रशस्त और भव्य था। इसके अतिरिक्त अन्य देवी-देवताओं के अनेक मंदिर थे। मंदिरों पर स्वर्ण-कलश और श्वेत पताकाएँ सुशोभित होती थीं। उनकी भित्तियों पर देव, दानव, सिद्ध, गंधर्व आदि के चित्र बने थे। यहाँ शिव की कामदेव के रूप में भी पूजा की जाती थी।

महाकाल वन जहाँ देश-दुनिया के श्रद्धालुओं को आकर्षित करता रहा है, वहीं एक दौर में यहाँ आक्रांताओं ने हमले भी किए। एक मान्यता के अनुसार १२३५ ई. के आसपास आततायी शासकों ने मालवा पर हमले के दौरान उज्जैन को भी लूटा था। महाकाल मंदिर में भी लूट-खसोट की गई थी, जिसका उल्लेख अँग्रेज इतिहासकारों ने किया है। परवर्ती काल में यह मंदिर हिन्दू-मुस्लिम सद्भावना का केन्द्र भी बना। अनेक मुस्लिम शासकों ने महाकाल सहित उज्जैन के विभिन्न मंदिरों में पूजा-प्रबंध के लिए सरकारी सहायता उपलब्ध करवाई। शाहजहाँ, औरंगजेब आदि सहित एक दर्जन मुस्लिम शासकों की ऐसी सनदें मिली हैं जिनसे ज्ञात होता है कि उन्होंने अपने शाही खजाने से महाकालेश्वर एवं अन्य मंदिरों में पूजा आदि के लिए मदद की थी। देश के प्रमुख मंदिरों में नंदादीप (निरंतर प्रदीप्त रहने वाला दीपक) लगाने की प्रथा रही है। उसका निर्वाह महाकाल मंदिर में आज भी हो रहा है। इस परम्परा के निमित्त १०६१ हिजरी में सम्राट आलमगीर ने चार सेर घी रोजाना जलाने के लिए एक सनद के माध्यम से राशि स्वीकृत की थी, जो धार्मिक सहिष्णुता का नायाब उदाहरण है।

मराठाकाल में राणोजी शिंदे के दीवान रामचंद्र बाबा सुखटनकर (या शेणवी) ने उज्जयिनी में धार्मिक पुनर्जागरण किया। उन्होंने १७३० के आसपास महाकाल के वर्तमान मंदिर, रामघाट, पिशाचमुक्तेश्वर घाट आदि का निर्माण करवाया था। इसी प्रकार पुराणोक्त चौरासी महादेव तथा अनेक शाक्त तथा शैव स्थलों के जीर्णोद्धार या नवीन प्राण-प्रतिष्ठा का कार्य भी मराठाकाल में संभव हुआ। सिंधिया राज्य के संस्थापक महादजी ने महाकाल मंदिर और उसके पुजारी वर्ग का आस्थापूर्वक पोषण किया। भोज, ग्वालियर, होल्कर राज्य के राजवंशियों की ओर से महाकालेश्वर के पूजन आदि के लिए निरंतर सहायता प्राप्त होती रही थी।

वर्तमान महाकालेश्वर मंदिर एवं परिसर सुविस्तृत, विशाल और अलग-अलग युगों की कला संपदा को सहेजे हुए है। महाकाल के दक्षिण मूर्ति शिवलिंग की विस्तीर्ण रजत निर्मित जलाधारी अत्यंत कलामय और नागवेष्टित निर्मित हुई है। शिवजी के सम्मुख नंदी की पाषाणमूर्ति धातुपत्रवेष्टित विशाल प्रतिमा है। गर्भगृह में पश्चिम की ओर गणेश जी, उत्तर की ओर भगवती पार्वती और पूर्व में कार्तिकेय की प्रतिमा स्थापित है। मंदिर में निरंतर दो नंदादीप तेल एवं घी के प्रज्वलित रहते हैं। मंदिर के गर्भगृह में प्रवेश के लिए पुरातन गलियारे के साथ ही अब विशाल सभागारयुक्त गलियारे बन गए हैं, जहाँ एक साथ सैकड़ों लोग दर्शन-आरती का आनंद ले सकते हैं महाकालेश्वर के ठीक ऊपरी भाग में ओंकारेश्वर की प्रतिमा है तथा सबसे ऊपरी तल पर नागचन्द्रेश्वर की। नागचंद्रेश्वर के दर्शन वर्ष में एक बार नागपंचमी के दिन ही होते हैं।

महाकालेश्वर परिसर में वृद्धकालेश्वर (जूना महाकाल), राम-जानकी, अवंतिका देवी, अनादिकल्पेश्वर, साक्षी गोपाल, स्वप्नेश्वर महादेव, सिद्धि विनायक, हनुमान, लक्ष्मी-नृसिंह आदि सहित अनेक लघु मंदिर भी हैं। मंदिर परिसर में विशाल कोटितीर्थ कुंड भी है, पुराणों में जिसकी बड़ी महिमा वर्णित है। कुंड के चहुँ ओर अनेक शिव मंदरियाँ हैं, जो इस स्थान के कला वैभव को बहुगुणित करती आ रही हैं। महाकाल मंदिर तथा आसपास के अन्य मंदिरों में परमारकालीन शिलालेख लगे हुए है जिनमें राजाभोज, उदयादित्य, नरवर्मन, निर्वाणनारायण, विज्जसिंह आदि राजाओं के भग्न शिलालेख प्राप्त हुए है। एक शिलालेख गुजरात के राजा सिद्धराज जयसिंह का भी है, जिसने उज्जयिनी पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् जिसकी स्मृति में यह अभिलेख मंदिर में लगवाया होगा। परमारकाल की अनेक कलात्मक प्रतिमाएँ मंदिर क्षेत्र में स्थान-स्थान पर लगी हुई हैं, जिनमें शेषशायी विष्णु, गरुडासीन विष्णु, उमा-महेश, कल्याण सुंदर, शिव-पार्वती, नवग्रह, अष्टदिक्पाल, पंचाग्नि तप करती पार्वती, गंगा-यमुना आदि की प्रतिमाएँ प्रमुख हैं। पूर्व में यहाँ परमार

राजाओं की प्रतिमाएँ भी लगी हुई थीं जिनमें से एक वर्तमान में विक्रम कीर्ति मंदिर स्थित पुरातत्त्व संग्रहालय में प्रदर्शित है।

महाकाल मंदिर में त्रिकाल पूजा होती है। प्रातःकाल सूर्योदय से पहले शिव पर चिताभस्म का लेपन किया जाता है। यह पूजा महिम्नस्तोत्र के 'चिताभस्मालेपः' श्लोक के अनुरूप होती है। इस पूजा हेतु किसी विशिष्ट चिताभस्म की निरंतर प्रज्वलित रहने वाली अग्नि से योजना की जाती है। तत्पश्चात् क्रमशः प्रातः आठ बजे, मध्याह्न में और सायंकाल के समय महाकाल की पूजा, शृंगार आदि किया जाता है। रात्रि में 10 बजे शयन आरती होती है। विभिन्न व्रत, पर्व और उत्सवों के समय महाकालेश्वर मंदिर का परिसर असंख्य श्रद्धालुओं की आस्था का विशेष केन्द्र बन जाता है। प्रतिवर्ष श्रावण मास के चार और भादौ मास के दो सोमवार पर निकलने वाली सवारियाँ देश-दुनिया के भक्तों और पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र बनती हैं। इन सवारियों का मूल भाव यही है कि महाकाल राजाधिराज हैं और वे उज्जयिनी की मुख्य सड़कों पर निकलकर प्रजा का हाल-चाल जानते हैं। इसी प्रकार की सवारियाँ कार्तिक मास में निकलती हैं। दशहरा पूजन के लिए महाकाल नए उज्जैन में पहुँचते हैं। महाशिवरात्रि, हरिहर मिलाप, रक्षाबंधन, वैशाख मास, नागपंचमी जैसे अनेक पर्वोत्सव भी इस मंदिर को विशेष आभा देते हैं। बारह वर्षों में उज्जैन में आयोजित सिंहस्थ के समय लाखों श्रद्धालु महाकालेश्वर के दर्शन के लिए पहुँचते हैं।

महाकाल कालगणना के अधिष्ठाता देव भी है। खगोलशास्त्रीय दृष्टि से उज्जयिनी का महत्त्व सुदूर अतीत से बना हुआ है। इसी स्थान से कर्क रेखा गुजरती है, जो भू-मध्य रेखा को काटती है। इसी दृष्टि से उज्जैन को पृथ्वी और कालगणना का केन्द्र माना गया है। क्षिप्रा नदी में नृसिंह घाट के पास कर्कराजेश्वर मंदिर है। ऐसी मान्यता है कि वहीं पर कर्क रेखा, भूमध्य रेखा को काटती है। यह स्थान महाकाल मंदिर से अधिक दूर नहीं है। स्पष्ट है कि महाकाल पृथ्वी के केन्द्र बिन्दु पर स्थित हैं और वे ही कालगणना के प्रमुख यंत्र 'शंकु यंत्र' के मूल स्थान हैं।

श्लोक से लोक तक सभी की आस्था का केन्द्र हैं महाकालेश्वर। लोक और लोकोत्तर सभी कामनाओं की पूर्ति के लिए भक्तगण अपनी-अपनी इच्छा उनके सम्मुख रखते हैं और उनकी पूर्ति के लिए मानवलोकेश्वर महाकाल का भंडार कभी रिक्त नहीं होता है।

आनन्द हो गया

कवि आनन्द

एक ज्ञान-सिंधु से एक बिन्दु मिल गया
वही हृदय-आँख में बिन्दु सिंधु हो गया.

वह दिग् दिगंत में, शब्द-शब्द में सदा
त्रिकाल एक काल-सा एक अर्थ हो गया.

सूर्य चन्द्र नयन में वह विश्व एक है
वही प्रकाश एक बन किरण किरण हो गया.

गगन धरा मिला दिये, स्वयं भी तो मिल गया
वह अन्त अन्त में एक अनन्त हो गया.

वह पूर्ण आकाश, पूर्ण वायु में सतत
पूर्ण अग्नि में सकल, पूर्ण सलिल हो गया.

अहं था अहं है हिम वही हिमगिरि
वही निर्झर नदी लहर लहर हो गया.

इस पार उस पार एक सार मिल गया
वही साँस साँस में एक प्राण हो गया.

वह पूर्ण सत्य है पूर्ण वह चेतना
अपूर्व नित निरन्तर सर्व सर्व हो गया.

अबाहय सर्वाबुभू एक अनुभव सदा
वह अनपर पर कर्म कर्म हो गया.

मौन ध्यान योग में एक शिव मिल गया
वही धर्म-मर्म कवि आनन्द हो गया.

देश-प्रीत

डॉ. महेश 'दिवाकर'

यह भारतवर्ष हमारा है.

सोने की रेखाओं जैसी
सूरज की किरणें लाल-लाल
पल-भर में सबका कर देतीं
सिंदूरी रंग का भव्य भाल.

झरनों से पल-पल झरती है
कहती जिसकी यश-धारा है
यह भारतवर्ष हमारा है.

सर-सर में खिलते अमल कमल
बहती सरिताएँ स्वच्छ विमल
गर्मी, सर्दी, पतझड़, बसंत
जिसके खलिहानों-खेतों में
भर देती ऋतुएँ धन अनन्त.

गंगा-जमुना के अमृत ने
जिस भू पर स्वर्ग उतारा है
यह भारतवर्ष हमारा है.

यह वीर प्रसविनी जन्म भूमि
कहते हैं इसको देव भूमि
जिसके धोता पद-तल सागर
आओ इसकी मिट्टी लेकर
पावन कर लें तन की गागर.

यह राम-कृष्ण का धाम हमें
प्राणों से बढ़ कर प्यारा है
यह भारतवर्ष हमारा है.

जिस धरती की आकाश तलक
पाने को तरसें देव झलक
वेदों की ऋचाएँ फैली हैं
रामायण गीता अजर अमर
मानवता जिसकी शैली है.

जिसने उत्सर्ग किए जग-हित
वह नहीं काल से हारा है
यह भारतवर्ष हमारा है.

उत्तर में खड़ा हिमालय है
यह देवों का देवालय है
है देव-सरीखा उच्च भाल
दक्षिण में पिता-सिन्धु कहता
ख़ुश रहना मेरे नौनिहाल.

जिसका सृजन विधि ब्रह्मा ने
अपने कर-कमल सँवारा है
यह भारतवर्ष हमारा है.

यह भारतवर्ष हमारा है,
यह भारतवर्ष हमारा है.

मुसीबतों के पहाड़ और एक अदद अभिनेता

डॉ. हरीश नवल

कहते हैं कि पूत के पाँव पालने में ही नज़र आ जाते हैं. जब मैं पालने में लेटे रहने की स्थिति में था तो न जाने मेरे दादाजान को मेरे पाँव में क्या नज़र आया कि उन्होंने भविष्य में मुझे अभिनेता बनाने का निर्णय ले लिया. मेरे पिता को भी वे अभिनेता बनाना चाहते थे परन्तु वे नेता बने. उनके नेता बनने पर भी दादाजान दु:खी केवल इसलिए नहीं हुए कि नेता को अभिनेता तो होना ही पड़ता है, पर हर अभिनेता नेता नहीं होता. मेरे दादाजी का शौक था कि उनका कोई वंशज अवश्य ही शुद्ध अभिनेता बने, इसीलिए मेरे पाँव देखकर वे बेहद खुश थे.

दरअसल मेरे दादाजान अपनी जवानी के दिनों में फारसी रंगमंच से बहुत जुड़े हुए थे और उस ज़माने की प्रसिद्ध अभिनेत्री गौहरजान के साथ उन्होंने तेरह धार्मिक नाटकों में काम किया था. यह तथ्य तो हमें बहुत बाद में पता चला कि दादाजान ने जिन तेरह नाटकों में गौहरजान के साथ काम किया था, उन सब में उनका रोल लगभग एक ही था कि वे सीता के रूप में, पार्वती के रूप में, तिलोत्तमा के रूप में या इंद्राणी के रूप में बनी गौहरजान के दाएँ-बाएँ चँवर डुलाते थे.

बहरहाल मैंने स्कूल के दिनों में दादाजान के बार-बार मास्टर खेमचंद जी और मुझे दबाव दिए जाने पर एक नाटक में पहली बार काम किया, नाटक में मुझे सलीम बनाया गया था. एक दृश्य में सलीम और अनारकली को प्रेमालाप करना था और बादशाह अक़बर को उन्हें भला-बुरा कहना था. ख़ुदा की मार यह थी कि अनारकली की भूमिका में मास्टर खेमचंद जी को कोई नाज़ुक-सा लड़का नहीं मिला, तो वे ख़ुद ही अनारकली के रूप में अवतरित हुए. मास्टर खेमचंद को अपने सामने देख मैं वैसे ही नर्वस था. नाटक करते हुए जब भी मैं उनकी ओर देखता तो मुझे याद आ जाता कि उन्होंने एक दिन क्लास में किस बेदर्दी से मुझे पीटा था, मेरा कसूर केवल यह था कि मैं उनकी अनुपस्थिति में उनकी शैली में कक्षा को पढ़ा रहा था. ज़ाहिर है कि उन्हें देखकर मेरे मन में कोई रोमांटिक भाव जन्म ले ही नहीं सकता था. दृश्य आरंभ हुआ, बादशाह अक़बर बगीचे में एक पेड़ के पीछे छिपकर सलीम अनारकली का प्रेमालाप सुन रहे हैं, अनारकली शर्माई-सी खड़ी है और मुझे सलीम के रूप में घुटनों के बल खड़े होकर एक विशेष मुद्रा में संवाद बोलने थे. संवाद का आरंभ कुछ इस तरह था, 'मेरी महबूबा, मेरी अनारकली, मेरे वीरान दिल की महबूबा अनारकली, मैं तुझे दिलोजान से चाहता हूँ मेरी अनारकली....परन्तु मास्टर खेमचंद जी को देखकर संवाद निकल ही नहीं रहे थे, पेड़ के पीछे खड़े अक़बर ने प्रॉमटिंग भी की पर मुझे कुछ सुनाई ही नहीं दिया. जनता प्रतीक्षा कर रही थी कि सलीम क्या बोलता है और अक़बर की प्रतिक्रिया क्या होगी - पर संवाद फूट ही नहीं रहे थे, मास्टर खेमचंद की गुस्से से भरी लाल आँखों को देखकर मेरे मुख से 'प्रेमी महबूबा' के बदले, 'मेरे मास्टर जी, मेरी वीरान होती ज़िन्दगी में ट्यूशन लेने वाले मास्टर जी - मैं आपको कैसे महबूबा कह सकता हूँ?' अपनी समझ में तो मैंने यह सब बहुत धीमे स्वर में कहा था, परन्तु कमबख़्त उस ज़माने में भी माइक बड़े तेज थे. मेरे संवादों के शब्द जैसे ही दर्शकों तक पहुँचे, दर्शक झूम उठे, तालियाँ और सीटियों के बीच मैंने सही-सही संवाद बोलने की कोशिश की पर जाने मास्टर खेमचंद को क्या हुआ कि उन्होंने अपनी चुनरी एक ओर फेंककर मुझे एक थप्पड़ लगाया और बोले, 'सलीम के बच्चे,

चल तुझे ट्यूशन पढ़ाऊँ, पिछले हफ़्ते की मार भूल गया, देखता हूँ कि तेरा बाप अक़बर भी अब तुझे कैसे बचाएगा?' और वे मुझे घसीटते हुए बगीचे से बाहर ले गए....

बस....इस यथार्थवादी अभिनय की घटना ने मेरे मन में यह भर दिया कि अब तो मैं अभिनेता ही बनूँगा. मेरे इस फ़ैसले पर मेरे दादाजान को बहुत ख़ुशी हुई और उन्होंने मास्टर खेमचंद को एक डिब्बा मिठाई दी और मुझे उनका सफलतम शिष्य घोषित किया.

कॉलेज की पढ़ाई तो मुझसे जैसे-तैसे चली. हर क्लास की शुरुआत मेरे लिए 'एंट्री' लेने की ही होती थी और समाप्ति पर्दा गिरने की. मेरी ज़ुबान से डॉयलॉग ही निकलते थे - मैं बातचीत तो करता ही नहीं था. कॉलेज की पढ़ाई बीच में से ही छुटाकर, (वैसे तो वह अपने-आप ही छूट गई थी) मेरे पिता मुझे एक नाटक कम्पनी में भरती करवा आए और इस तरह मैं धीरे-धीरे शुद्ध अभिनेता बन गया. मेरी शुद्धि पर दादाजान बड़े ही रोमांचित थे, उनके सपने पूरे हो गए थे. सपनों के पूरा होते ही वे तो चल बसे पर मेरे मन में अभिनय बसा गए.

अभिनेता बनने से पहले लगता था कि अभिनेता का काम बहुत ही सुखद होता है परंतु बनने पर पता चला कि अभिनेता की स्थिति इस धरातल पर है क्या?

मैं विवाह योग्य हुआ. एक रिश्तेवाले आए परंतु यह सुनकर कि मैं अभिनय का काम करता हूँ, वे बुरा-सा मुँह बनाकर, यह कहकर चले गए कि, 'अभिनेता का भी कोई काम होता है? डॉक्टर होता है, इंजीनियर होता है, प्रोफेसर होता है बल्कि यहाँ तक कि कवि होता है, कहानीकार होता है पर ये भला अभिनेता का भी कोई व्यवसाय है, हमें नहीं देनी लड़की यहाँ पर.' वे तो पर्दा गिराकर चले गए पर मेरे मन में सैकड़ों ट्यूब लाइटें जला गए. मेरी ही मण्डली में एक अभिनेत्री थी जिसके साथ ऐसी दुर्घटनाएँ अनेक बार हो चुकी थीं, मैंने उसे ही अपनी अनारकली बनाया और मास्टर खेमचंद की गवाही पर कोर्ट में शादी कर ली.

शादी के बाद हमें तलाश हुई मकान की. हमने अनेक मकान देखे पर मकान मालिक यह सुनते ही कि मैं अभिनेता हूँ, अपनी बीबी और बेटियों को छिपा देते और फिर हमें मकान के मेन गेट के पार करवा आते. आख़िरकार हमें खण्डहर हो रही एक पुरानी ठुमरी गायिका ने किराएदार बना लिया. उसकी किराए की शर्त भी विचित्र थी. वैसे तो किराया छह सौ रुपये था पर यदि कोई किराएदार रोज़ उनसे एक ठुमरी सुने तो किराया चार सौ रुपये हो सकता था. आख़िरकार फ़ैसला साढ़े चार सौ रुपये और महीने में पंद्रह ठुमरियों पर तय हुआ.

आप कल्पना कर सकते हैं कि हर दूसरे रोज़ रिहर्सलों की थकान के बाद घर लौटकर मकान मालकिन की बेसुरी ठुमरी सुनने में कितना आनंद आता होगा. रोम-रोम में आनंद की धारा बहने लगती, कानों में मानो शीशा पिघलता होता. आठ-दस महीनों में हमें ठुमरी की आदत हो गयी पर जब हमारे घर एक नया प्राणी आया और जब उसने अपनी ठुमरियाँ ज़ोर-ज़ोर से गानी शुरू कर दीं तो किराया साढ़े छह सौ हो गया और पंद्रह ठुमरियाँ पूर्ववत् रहीं. दो सौ रुपये मकान मालकिन ने हमारे बच्चे के संगीत को बर्दाश्त करने के बढ़ाये थे.

रंगमंच पर अपको अभिनय करना है तो भावों के प्रकटीकरण के साथ-साथ आप जानते ही हैं कि संवादों को ठीक ढंग से प्रस्तुत किया जाना कितना ज़रूरी है. बचपन में मुझे सातवीं कक्षा तक भी पहाड़े याद नहीं हो सके. पर अब छह-छह पृष्ठों के संवाद भी याद होने लगे. एक दिन मैं बस में रिहर्सल के लिए जा रहा था. महानगरों में रास्ता तो लंबा ही होता है ऐसे में यदि कोई खाली सीट मिल जाए तो ऐसा लगता है जैसे पचास साल की कुँवारी कन्या को अचानक वर मिल जाए. मैंने सीट पर बैठते ही अपनी डायरी पढ़नी शुरू कर दी. जिस नाटक की रिहर्सल के लिए मैं जा रहा था, मैंने पाया कि मैंने उसके संवाद

न याद कर किसी दूसरे नाटक के कर लिए थे. अब क्या हो! पैंतालिस मिनट का रास्ता था और पंद्रह संवाद याद करने थे. मैंने संवाद याद करने आरंभ कर दिए. एक संवाद जरा कठिन था. मैं उसे याद करने की कोशिश में था. एंग्री यंग मैन की मुद्रा में संवाद कुछ ऐसा था, ' हमसे है ज़माना हम ज़माने से नहीं हैं. हम वो मिट्टी की दीवार नहीं हैं जो तुम्हारे छूने से भरभराकर गिर पडें. भवानी सिंह, तुममें अगर दम है तो इस आँधी को रोक कर दिखाओ.' मैं आँखें बंद कर संवाद याद कर रहा था कि अचानक ब्रेक लगा, इससे पहले की आँखें खुलतीं मेरे जबड़े पर एक घूँसा पड़ा और मारने वाले के संवाद कान में प्रवेश कर गए, 'ले बेटा, यह दीवार गिरा दी, क्या समझता है तू भवानी सिंह को, होगा तू किसी कॉलेज यूनियन का प्रेसीडेंट, मैं भी कंडक्टरों की यूनियन का ऑल इंडिया सेक्रेटरी हूँ, तू अगर आँधी है तो मैं तूफ़ान हूँ. ले रोक दी बस, बता क्या करेगा तू?'

मैंने सहमते और जबड़ा सहलाते हुए देखा कि बस का लंबा-चौड़ा कंडक्टर मेरे सामने तन कर खड़ा था. मैंने आँखों के आगे आए हुए तारों में से झाँककर देखा, उसकी वर्दी पर लगे हुए बिल्ले में साफ़-साफ़ शब्दों में 'भवानी सिंह' लिखा हुआ था. जिस कठिनाई से मैंने भवानी को शांत किया उसे मैं ही जानता हूँ.

एक दिन की बात है, मैं नाटक खेल कर घर लौट रहा था. रात के बारह बज चुके थे. नाटक लंबा था. दस बजे शो ख़त्म हुआ, साढ़े ग्यारह बजे तक रो-पीटकर पेमेंट मिली. आख़िरी बस निकल जाने का डर था अत: मेकअप हटाये बिना ही बस स्टैंड की ओर लपका.

उस दिन नाटक में मेरा रोल एक बड़े स्मगलर के एक खास आदमी का था, मैंने काली पैंट पर धारीदार टी-शर्ट पहनी हुई थी. गले में लाल रुमाल था. चेहरे पर घनी डरावनी नकली मूँछें लगी हुई थीं. यदि मेकअप साफ़ करता तो जब तक घर पहुँचता, मेरी बीबी तलाक के कागज़ों पर हस्ताक्षर कर चुकी होती. आती बस देख कर मैं उसमें चढ़ने के लिए तेजी से दौड़ रहा था कि मैंने पाया कि दो पुलिस वाले भी मेरे पीछे दौड़ रहे हैं. मैं बस छूटने के डर से और तेजी से दौड़ा पर तब तक दोनों मुझ तक पहुँच गए. इससे पहले कि मैं बस पकड़ता, उन्होंने मुझे गर्दन से पकड़ लिया. जिसके फीती लगी हुई थी उसने डंडा घुमाते हुए कड़ी आवाज़ में पूछा, 'तू कौन है? किसको लूट कर आ रहा है या लूटने जा रहा है? किस गिरोह में है?' बस निकल जाने पर मेरी घिग्घी बँध गई थी. मेरे मुँह से कुछ शब्द तो निकले पर उनका शायद कोई अर्थ नहीं था. तभी बिना फीती वाले ने गर्दन कसते हुए कहा, 'हवलदार जी, ये खेतनवाली के गिरोह का लगता है, इसी गिरोह के आने की ख़बर एस.पी. साहब ने दी थी.'

मैंने कुछ बोलना चाहा पर गर्दन कसी होने से बोल नहीं पाया, उस पर बिजली यह गिरी कि मेरी मूँछ एक ओर से नीचे गिर पड़ी. हवलदार ने ज़मीन से मूँछ को एक फीती की तरह उठाया और बिना फीती वाले को दे दी और संवाद दागा, 'ठीक कह रहे हो दीवान जी, बेटे ने मूँछ भी नकली लगा रखी है. इसे कोतवाली ले चलो और इसकी शक्ल का मिलान दस नंबरियों की फ़ोटो से करो. बड़ा शातिर बन रहा है. सड़क पर भागा चला जा रहा था, इतनी तेज ओलंपिक में दौड़ता तो साले, देश के लिए स्वर्ण पदक तो आ जाता.

वे दोनों मुझे पकड़कर कोतवाली में ले गए, वहाँ जो मेरा हाल हुआ वे न जानें तो बेहतर है. यहाँ जो हुआ सो हुआ पर सरकारी कोतवाली से लौटकर घरेलू कोतवाली में जो पूछ-ताझ हुई, जो तोहमतें लगीं, जो-जो गंगा-जमुना की धारें बहीं, जो नाटक हुआ उससे दु:खी होकर मेरा मन करुण स्वर में स्वर्गीय दादाजान को याद करते हुए यही कहने लगा, 'इस अभिनय को ज़िंदगी से छुड़वाओ दादाजी!' दादाजान की आदमक़द तस्वीर से तभी एक फूल नीचे गिरा, मैंने तस्वीर के पैर छुए और उस दिन से ही अभिनय का व्यवसाय छोड़कर रो-पीटकर हिन्दी में एम.ए. की और शिक्षक बन गया.

शिक्षक बन कर भी कोई सम्मान बढ़ा नहीं. यहाँ भी असंतुष्ट ही हूँ, उधर से कई वर्षों से दिल ज़ार-ज़ार रो रहा है. दूरदर्शन की कृपा से अभिनेताओं के दिन फिर गए हैं. इस समय समाज में वे सर्वाधिक प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं. उन्हें लोग आँखों में बैठा रहे हैं, पर मुझे कोई पूछता तक नहीं. मेरे सिखाये कितने चेले-चपाटे रोज़ शाम को टी.वी. में दिखते हैं और मानो कहते हैं, 'गुरूजी, तुम तो ज़ीरो ही रहे, हमें देखो हम हैं हीरो.' - अब मुझे दादाजान फिर से याद आ रहे हैं.

ग़ज़ल

डॉ. श्याम सखा 'श्याम'

भीड़ में रह कर भी है खाली मकाँ-सी ज़िंदगी
दोस्तों हमको लगी है इम्तिहाँ-सी ज़िंदगी

गुफ़्तगू जब से हुई है ख़त्म अपनी, आपसे
रह गई है बन के गूँगे का बयाँ-सी ज़िंदगी

लाश की मानिन्द ढोती तू रही अक्सर मुझे
झाड़ कर पल्ला है क्यों हैरतकुनाँ-सी ज़िंदगी

क्यों भटकती फिर रही है जा-ब-जा कुछ तो बता
करके घर तामीर भी है तू क्यों दुकाँ-सी ज़िंदगी

गिर गए हैं जब से हम तेरी निगाहों से सनम
है लगे हमको तो अब ये बदगुमाँ-सी ज़िंदगी

गाँव से आई थी, तोहफ़ा सादगी का तब थी तू
शहर आकर हो गई तू हुक्मराँ-सी ज़िंदगी

थी तमन्ना 'श्याम' की बन शमअ-सा जलता रहे
उम्र गीली हो गई अपनी धुआँ-सी ज़िंदगी

हिन्दी का शतकीय इतिहास : विकासात्मक परिदृश्य

डॉ. पूरनचंद टंडन

भाषा वैज्ञानिक की शोध के आधार पर यह स्थापित है कि 'हिन्दी' शब्द का संबंध 'सिंधु' से है. सिंधु से अभिप्राय है 'सिंध नदी' और धीरे-धीरे सिंध नदी के आस-पास का क्षेत्र ही 'सिंधु' कहलाने लगा. ईरान में जाकर यह सिंधु शब्द 'हिंदू' हो गया और हिंदू से फिर 'हिन्द' कहलाया. धीरे-धीरे सिंध प्रदेश का परिचायक यह शब्द अर्थ की दृष्टि से विस्तार पा गया और पूरे भारत का वाचक - 'हिन्द' बन गया. बाद में 'ईक' प्रत्यय लगकर यह 'हिंदीक' हो गया, जिसका अभिप्राय था - हिंद का. यूनानी शब्द 'इंदिका' और अँग्रेजी शब्द 'इंडिया' भी इसी 'हिंदीक' शब्द का आधुनिक या विकसित रूप है. 'हिन्दी' ही आज हिंद की भाषा के रूप में जानी जाती है.

आज हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में या प्रदेशों में बोली जाने वाली बोलियाँ 'हिन्दी' शब्द का विस्तार ही हैं. यही नहीं ब्रज, अवधी, मैथिली, भोजपुरी, डिंगल तथा खड़ी बोली आदि का समग्र साहित्य 'हिन्दी साहित्य' कहलाता है. कुछ लोग 'पश्चिमी हिन्दी' तथा 'पूर्वी हिन्दी' को ही हिन्दी कहना उचित समझते हैं. जॉर्ज ग्रियर्सन ने ब्रज, खड़ी बोली, बुन्देली, हरियाणवी, कन्नौजी, अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी - इन आठ बोलियों के समूह को हिन्दी कहा. आगे चल कर 'हिन्दी' शब्द का अर्थ-संकोच हुआ और इससे अभिप्राय 'खड़ी बोली साहित्यिक हिन्दी' लिया जाने लगा. इस खड़ी बोली हिन्दी के बीज हमें आदिकालीन कवि अमीर खुसरो के साहित्य में तथा मध्यकालीन संत काव्य परम्परा में स्पष्ट दिखाई देते हैं. अपने लगभग डेढ़ सौ वर्ष के विकासात्मक इतिहास में यही खड़ी बोली हिन्दी अब भारत की सम्पर्क भाषा भी है, राजभाषा भी है. यही हिन्दी आधुनिक हिन्दी साहित्य के सृजन एवं विवेचन - मूल्यांकन की भाषा भी है तो यही हिन्दी सरकारी रेडियो चैनलों की, समाचार पत्र-पत्रिकाओं की, दूरदर्शन की, सिनेमा की तथा शिक्षा-माध्यम की समृद्ध एवं विकसित भाषा भी है. इसी हिन्दी के द्वारा अब हम अनुवाद कर्म को प्रोत्साहित करते हुए विश्व ज्ञान को आयात करने का कार्य भी कर रहे हैं तथा भारतीय मूल्यों और सांस्कृतिक धरोहर को विश्व प्रतिष्ठित करने का प्रयास भी कर रहे हैं. आज यही हिन्दी मानक, परिनिष्ठित एवं आधुनिक हिन्दी बन गई है.

जब हम हिन्दी के आरंभ की बात करते हैं तो सातवीं सदी के मध्य से इसकी स्वीकृति होती है. किन्तु वास्तव में हिन्दी के अस्तित्व में आने का सही समय १००० ई. ही स्वीकारा जाता है. सातवीं सदी से १००० ई. के मध्य का साहित्य मुख्यत: अपभ्रंश भाषा में विरचित है. इसलिए उसे हिन्दी साहित्य की आधारशिला या पृष्ठभूमि कहना ही उचित प्रतीत होता है. इस तरह लगभग १००० वर्ष से हिन्दी भाषा एवं साहित्य इतिहास का दसवाँ भाग, जिस पर हम विगत सौ वर्ष की हिन्दी के रूप में विचार कर रहे हैं, खड़ी बोली हिन्दी का ही इतिहास है. हालाँकि प्रारम्भिक दो युगों में तथा छायावादी युग में भी ब्रजभाषा के माध्यम से साहित्य सृजन समांतर चलता रहा, किन्तु मुख्य रूप से साहित्य भाषा खड़ी बोली हिन्दी ही रही. हम हिन्दी साहित्य के इतिहास को आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल एवं आधुनिक काल में विभक्त करते हैं तो विगत सौ वर्षों की हिन्दी में केवल आधुनिक काल की हिन्दी पर ही विचार करते हैं. इस सौ वर्षों के हिन्दी-इतिहास की भाषा खड़ी बोली हिन्दी है और इसकी लिपि देवनागरी लिपि है.

आधुनिक काल में आकर हिन्दी भाषा और साहित्य का जो नवोन्मेष हुआ उसमें देशकाल तथा युग की परिस्थितियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका थीं. राजनीतिक कारणों में सन् १८५७ के प्रबल विद्रोह को, स्वतंत्रता संग्राम को, स्वतंत्रता सेनानियों के वीर गति प्राप्त करने की घटनाओं को, महारानी विक्टोरिया के आगमन को, इंडियन नेशनल काँग्रेस की स्थापना को, सन् १९२० में काँग्रेस की बागडोर गाँधी जी के हाथ चले जाने को, असहयोग आंदोलन को, मुस्लिम लीग की स्थापना को, सन् १९३० के सांप्रदायिक दंगों को, १९४२ को काँग्रेस द्वारा पास किए गए 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव को सन् १९४६ में हुए 'अंतरिम सरकार के गठन' को तथा १५ अगस्त १९४७ को प्राप्त हुई देश की स्वतंत्रता को भुलाया नहीं जा सकता. हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में इन घटनाओं की अपनी-अपनी सीधी या प्रकारांतर से रचनात्मक भूमिका रही है.

सामाजिक, धार्मिक दृष्टि से यह युग अंधविश्वासों, कुरीतियों का युग था. नारी-जाति के प्रति सम्मान का अभाव, सती प्रथा, अशिक्षा, बाल हत्या, नर बलि, अस्पृश्यता, धार्मिक रूढ़ियाँ, धर्मांधता आदि न जाने कितनी सामाजिक समस्याएँ थीं जिनका प्रभाव हिन्दी भाषा और साहित्य पर दिखाई देता है. ब्रह्म समाज की स्थापना, महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा आर्य समाज की स्थापना, वैदिक धर्म की पुनःप्रतिष्ठा, वेदों के प्रति श्रद्धा का प्रचार, जागरण चेतना, शिक्षा संथाओं का निर्माण तथा शिक्षा महात्म्य का प्रसार, नारी के प्रति सम्मान-श्रद्धा की भावना का विस्तार, अनासक्ति योग का प्रसार तथा सुधारवादी आंदोलन आदि ने भी हिन्दी भाषा-भाषियों को, साहित्यकारों को, समाज सुधारकों को, चिंतको-दर्शनिकों को प्रभावित किया. इन सबका भी सौ वर्षीय हिन्दी के विकास में उल्लेखनीय योगदान है.

१८५७ के पश्चात् अँग्रेजी राज तथा भारतीय जन समुदाय का शोषण भी साहित्य सेवियों को प्रभावित करता है. भारतीय उद्योग-धंधों को विनष्ट करने का षड्यंत्र, कच्चे माल का भारत से ले जाना, विदेशी पूँजी से भारत में उद्योग लगाना, तरह-तरह से देश तथा देशवासियों का आर्थिक शोषण करना भी जन-आक्रोश का प्रेरक बना.

भारतेन्दु युग तक आते-आते मध्यकालीन साहित्यिक परम्पराओं की रक्षा भी की गई तथा साहित्य योग के नए आयामों को भी खोजा गया. साहित्य के पद्य एवं गद्य रूपों का विकास होने लगा. गद्य की अनेक विधाएँ तथा उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा, निबंध, यात्रा-वृतांत, डायरी लेखन, साक्षात्कार, आलोचना, रिपोर्ताज़, अनुवाद, पत्र-पत्रिकारिता लेखन, फीचर लेखन तथा व्यंग्य लेखन आदि जुड़ती-बढ़ती चली गईं. नये जीवन मूल्य उदित होने लगे. इन नयी तमाम परिस्थितियों के संदर्भ में हिन्दी भाषा और साहित्य का आधुनिक संस्कार होता चला गया. विज्ञान तथा उद्योगों ने भी साहित्य की भूमि को छुआ. परिवेश में आधुनिकता आई, भाव-बोध में आधुनिकता आई, दर्शन-सोच तथा दृष्टि में आधुनिकता आई, परिणामतः साहित्य में भी आधुनिकता आने लगी. भाषा का आधुनिकीकरण होने लगा.

हिन्दी गद्य के विकास तथा आधुनिक स्वरूप की आधारशिला रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई लल्लू लाल, सदल मिश्र, मुंशी सदासुखलाल 'नियाज़' तथा ईशाँ अल्ला खाँ ने. हालाँकि इससे पहले भी हिंदी के पास गद्य था पर वह ब्रज भाषा गद्य था, राजस्थानी गद्य था, अवधी गद्य था, दक्खिनी हिन्दी का गद्य था. खड़ी बोली का गद्य इससे पहले पूर्णत: चलना नहीं सीख पाया था, अमीर खुसरो तथा कबीर आदि संतों के काव्य में उस गद्य का प्रवेश हो गया था, पर वह किसी भी तरह प्रौढ़, परिनिष्ठित या मानक नहीं था. कुछ अनुवाद कार्यों ने भी इस दिशा में उल्लेखनीय भूमिका निभाई थी. हिन्दी के इस गद्य विकास में ईसाई प्रचारकों का योगदान अविस्मरणीय था. ब्रह्म समाज, आर्य समाज तथा सरकारी

भाषा नीति भी हिन्दी विकास के लिए महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए. श्रद्धाराम फिल्लौरी, शिवप्रसाद सितारे हिंद तथा राजा लक्ष्मण सिंह के अमूल्य योगदान को भी विगत सौ वर्षों की हिन्दी पर विचार करते हुए भुलाया नही जा सकता.

इस प्रकार भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद, राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा का युग, प्रतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता तथा समकालीन कविता का इतिहास हो या गद्य विधाओं में नाटक, एकांकी, उपन्यास, कहानी, आलोचना, निबंध, संस्मरण, रेखाचित्र, डायरी, जीवनी, आत्मकथा, साक्षात्कार, यात्रा वृतांत, रिपोर्ताज़, पत्रकारिता, अनुवाद आदि विधाओं का इतिहास हो, सभी सौ वर्ष की साहित्यिक हिन्दी, संप्रेषणीय हिन्दी, ज्ञान-विज्ञान की हिन्दी, अनुवाद की हिन्दी, मीडिया की हिन्दी तथा अन्य प्रयोजनपरक आयामों की हिन्दी के परिचायक हैं.

सौ वर्षों की हिन्दी ने साहित्यिक दृष्टि से राष्ट्रीय भावना को, सामाजिक सांस्कृतिक चेतना को, हास्य-व्यंग्य के माध्यम से समाज और राष्ट्र की कुरीतियों को उजागर किया है. भक्ति, प्रेम, श्रृँगार, रीति-निरूपण, प्रकृति चित्रण, सुधारवादी आंदोलन, समन्वय भावना का विस्तार, विधाओं का, काव्य रूपों का विस्तार, भाषा-शिल्प की नई जीवनोपयोग दिशा का निर्धारण, बौद्धिकता की प्रतिष्ठा, स्वच्छंदतावादी चेतना का विस्तार, व्यक्ति निष्ठता की प्रतिष्ठा, रहस्य भावना का समावेश, विश्व-बंधुत्व का प्रसार तथा भारतीय इतिहास, दर्शन एवं संस्कृति का महात्म्य, कल्पना की सृजनात्मक शक्ति का विस्तार, गौरवपूर्ण राष्ट्रीय इतिहास का गायन, सांस्कृतिक विरासत के प्रति सरोकार, वर्गभेद की समझ तथा शोषकों के प्रति आक्रोश, जीवन एवं समाज के प्रति यथार्थ दृष्टि, मार्क्सवादी दृष्टि का प्रवेश, भाग्यवाद का विरोध, सौंदर्याभिव्यक्ति की पक्षधरता, यौन वर्जनाएँ, सपाट बयानी, नए-नए उपमान, प्रतीक एवं बिंबों का प्रयोग - सभी कुछ विगत सौ वर्षों के हिन्दी इतिहास की देन हैं.

आधुनिक हिन्दी का आरंभिक युग हिन्दी उर्दू के अंत: संबंधों से ही निर्मित होता है. भारतीय एकता का परिचय देने वाला आधुनिक साहित्य हिंदुस्तानी भाषा को ही महत्त्व देता है. राजा शिव प्रसाद सितारे हिंद उर्दू के पक्षधर थे जबकि राजा लक्ष्मण सिंह हिन्दी के परिनिष्ठित रूप को महत्त्व दे रहे थे. भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने समन्वयवादिता को अपनाते हुए उच्च कोटि की नवीन हिन्दी को प्रोत्साहित करने पर बल दिया.

राजा राममोहन राय ने इस्लामी एकेश्वरवाद, औपनिषदिक दर्शन तथा अरस्तू, प्लूटो आदि यूनानी विचारकों का समन्वय कर 'ब्रह्म समाज' की स्थापना से ऐसी विचारधारा का प्रयास किया जो समस्त बाह्याचारों से मुक्त थी. केशवचंद्र सेन के प्रभाव से 'प्रार्थना समाज' की स्थापना ने भी हिन्दी की दिशा तय करने में भूमिका निभाई.

डॉ. लक्ष्मीनारायण गुप्त ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी भाषा और साहित्य को आर्यसमाज की देन' में स्पष्ट लिखा है कि 'उन दिनों अधिकांश व्यक्ति स्वामी जी के धार्मिक दृष्टिकोण को समझने और ग्रहण करने के लिए आर्यसमाज के हिन्दी पत्रों को पढ़ते और दूसरों से भी प्रचार करते थे. अनेक धर्म प्रेमी लोगों ने हिन्दी पढ़ना इसलिए प्रारंभ किया कि वे आर्य समाज के धार्मिक सिद्धांतों को समझ सकें.'

इसी बात को इंद्र वाचस्पति ने दूसरे रूप में प्रस्तुत करते हुए लिखा कि 'राष्ट्रभाषा के संवर्धन के मैदान में आर्य समाज अग्रगामी बना रहा. भारत में पहला शिक्षणालय, जिसमें राष्ट्रभाषा के माध्यम से संपूर्ण ज्ञान और विज्ञान की शिक्षा का सफल परीक्षण किया गया, जो गुरुकुल काँगड़ी था, जिसके साथ समयान्तर में आर्य समाज द्वारा चलाये गए अन्य गुरुकुलों की शक्ति भी मिल गई.'

वास्तव में यह प्रारम्भिक दौर वह दौर था जब हिन्दी की प्रचार-प्रसार तथा धार्मिक सामाजिक आंदोलनों का स्वरूप पूरे भारत में ही नहीं धीरे-धीरे विदेशों में भी गतिमान होने लगा था. 'थियोसॉफ़िकल

सोसायटी' का नाम इस दिशा में उल्लेखनीय है. 'ऐनी बेसेंट' ने भी अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका इस दृष्टि से निभाई.

अनेक सांस्कृतिक, साहित्यिक, भाषिक संस्थाओं ने भी हिन्दी की मज़बूत आधारशिला रखने तथा एक सशक्त सुंदर भवन तैयार करने की दिशा में अविस्मरणीय योगदान किया. नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी जिससे पण्डित मदन मोहन मालवीय, अंबिका दत्त व्यास, राधाचरण गोस्वामी, श्रीधर पाठक, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' जैसी महान् साहित्यिक हस्तियाँ संबद्ध रहीं; एक से एक दुर्लभ कार्य इस सभा के मंच से हुए. इतिहास लेखन, कोष लेखन, पत्रिका प्रकाशन, गोष्ठी आयोजन, शब्दावली निर्माण, हस्तलिखित ग्रंथों की सूची तथा खण्डों का संपादन कार्य, शोध-प्रोत्साहन सभी कुछ हिन्दी के लिए इस सभा ने किया. सरस्वती पत्रिका का प्रकाशन भी सभा के सहयोग से ही होता रहा. हिन्दी साहित्य सम्मेलन भी सभा ने ही प्रारंभ किया. पण्डित मदनमोहन मालवीय जी के नेतृत्व में १ मई १९१० को एक बैठक कर सम्मेलन की स्थापना हुई और राष्ट्रलिपि देवनागरी एवं राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार पर विचार किया गया. हिन्दी विद्वानों को पुरस्कृत-सम्मानित करने का कार्य भी इसी मंच से प्रारंभ हुआ. सम्मेलन के ग्रंथालय में आज भी लगभग ९००० पांडुलिपियाँ हैं और ६०,००० के आसपास ग्रंथ भी उपलब्ध हैं. 'सम्मेलन पत्रिका', 'माध्यम पत्रिका', तथा 'राष्ट्रभाषा संदेश' पत्रिका आज भी हिन्दी के प्रचार-प्रसार में अविस्मरणीय योगदान कर रही हैं.

इस प्रकार दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार-प्रसार हेतु 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' की स्थापना राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जी के निर्देशानुसार की गई. भारतीय एकता को सुदृढ़ बनाने के निमित्त इसकी स्थापना की गई. प्रांतीय भाषाओं के माध्यम से हिन्दी के विकास का उद्देश्य स्तुत्य था. इसी प्रकार वर्धा में 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति', मुंबई में 'हिन्दी विद्यापीठ', देवघर में 'हिन्दी विद्यापीठ', दिल्ली में 'अखिल भारतीय हिन्दी संस्था संघ', 'केंद्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद्' 'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्' पटना में, 'असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' गुवाहाटी में, मणिपुर हिन्दी परिषद्' इम्फाल में, कर्नाटक महिला हिन्दी सेवा समिति' बैंगलोर में, मैसूर हिन्दी प्रचार परिषद्', राष्ट्रभाषा परिषद्', उड़ीसा में, 'केरल हिन्दी प्रचार सभा' तिरुअनंतपुरम में, 'हिन्दी प्रचार सभा', हैदराबाद में, 'महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा', पुणे में तथा ऐसी ही अनेक अन्य संस्थाएँ हिन्दी शिक्षण, प्रशिक्षण, साहित्य सृजन, भाषा-प्रचार, पत्रिका एवं साहित्य प्रकाशन, गोष्ठी कार्यशाला आयोजन के कार्यों में लगी हैं.

हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं ने भी विगत सौ वर्षों में हिन्दी की भरपूर सेवा की है. हिन्दी पत्रकारिता का अपना एक सुदीर्घ इतिहास है. बंगदूत, प्रजामित्र, बनारस अख़बार, सुधाकर, तत्त्वबोधिनी पत्रिका, हरिश्चंद्र मैगज़ीन, भारतबंधु, काशी पत्रिका, हितवाणी, कर्मयोगी, मर्यादा, सरस्वती, सुदर्शन, कल्याण, माधुरी, समन्वय, सरोज, भारतमित्र, साहित्य संदेश, हिन्दी मिलाप, शक्ति, वीणा, विशाल भारत आदि अनेक उत्कृष्ट साहित्यिक-भाषिक पत्रिकाएँ रही हैं जिन्होंने समाज, संस्कृति, समस्याएँ, समाधान तथा साहित्य की अनेक विधाओं को हिन्दी भाषा के माध्यम से पाठकों तक पहुँचाया है.

हिन्दी काव्य भाषा, गद्य भाषा तो रही ही, स्वतंत्रता आंदोलन की सशक्त भाषा भी बनी. स्वामी दयानन्द सरस्वती ने लिखा कि 'हिन्दी द्वारा सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है. मेरी आँखें उस दिन को देखने के लिए तरस रही हैं, जब कश्मीर से कन्याकुमारी तक सब भारतीय एक ही भाषा को समझने और बोलने लगेंगे.' 'ब्रह्म समाज' के संस्थापक की इस भावना का विस्तार हिन्दी साहित्य में हुआ और भाषा प्रेम का बीज-वपन भारतेन्दु ने किया -

निज भाषा उन्नति अहे सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल।।

बालमुकुंद गुप्त ने लिखा -

अपना बोया आप ही खावै।
अपना कपड़ा आप बनावै।।
माल विदेशी दूर भगावै।
अपना चरखा आप चलावै।।

दादाभाई नौरोजी ने १९०६ में आयोजित काँग्रेस के २२वें अधिवेशन में 'स्वराज्य' शब्द का प्रथम बार प्रयोग किया. हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा और भारतीय संघ की राजभाषा बनाने में राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन का अतुल्य योगदान रहा. द्विवेदी युग में गयाप्रसाद शुक्ल स्नेही, मैथिलीशरण गुप्त, सियाराम शरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, जयशंकर प्रसाद, बालकृष्ण शर्मा नवीन, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, रामधारीसिंह दिनकर आदि अनेक कवियों ने स्वतंत्रता के गीत लिखे तथा हिन्दी जगत् को जाग्रत किया. 'झाँसी की रानी', 'एक फूल की याद', 'क्रांति गीत', बादल राग' तथा 'हिमाद्रितुंग श्रृंग' से जैसे कितने ही गीत हैं जो हमारी राष्ट्रीय चेतना के संवाहक बने हैं.

इधर हिन्दी एक राजभाषा के रूप में, राष्ट्रभाषा के रूप में, संपर्क भाषा के रूप में तथा प्रयोजनमूलक हिन्दी के रूप में भी विकसित हुई है. मौखिक और लिखित दोनों ही रूपों में हिन्दी का विकास राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हुआ है. समाज और संस्कृति के वैविध्य के कारण हिन्दी में पर्याप्त विविधता आई है. हिन्दी का व्याकरण न केवल सशक्त हुआ है, अपितु उसका आधुनिकता के संदर्भ में विकास भी हुआ है. शब्द सम्पदा के रूप में, मुहावरों-लोकोक्तियों के रूप में, पारिभाषिक शब्दावली के रूप में हिन्दी आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता आत्मसात कर रही है. वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग ने लगभग नौ लाख पारिभाषिक शब्द हिन्दी के तैयार कर दिये हैं तो केंद्रीय हिन्दी निदेशालय ने अनेक कोषों का निर्माण कर एक सशक्त आधार तैयार कर दिया है. आज प्रवासी साहित्य भी हिन्दी में बड़े भाग में मिलने लगा है. हिन्दी भूमंडलीकरण से जुड़ रही है. व्यापार-बाज़ार की भाषा भी हिन्दी बन रही है. हिन्दी का शिक्षण-प्रशिक्षण, हिन्दी में शोध, हिन्दी में अनुवाद तथा हिन्दी से देश-विदेश की भाषाओं में अनुवाद भी युद्ध स्तर पर होने लगे हैं. सैकड़ो बड़ी स्वयंसेवी, सरकारी अनुदान पोषित संस्थाएं दिन-रात हिन्दी के कार्य को प्रोत्साहित कर रही हैं, विकसित कर रही हैं. मशीनों और भाषा में, कम्प्यूटर और अनुवाद में, रचनात्मक संबंध बनने लगा है. ज्ञान-विज्ञान, जीवनोपयोगी साहित्य, रोजी-रोटी की भाषा हिन्दी में अब मौखिक तथा अनूदित रूप में आने लगा है.

अनेक विदेशी अवधारणाओं को हिन्दी ने भारतीयता के रूप में पुनर्सृजित कर डाला है. अनुसृजन एवं पुनर्सृजन का यह सिलसिला निरंतर आगे बढ़ रहा है. भारतीय अनुवाद परिषद्, राष्ट्रीय अनुवाद मिशन, केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो, केंद्रीय हिन्दी प्रशिक्षण संस्थान, केंद्रीय हिन्दी संस्थान और ऐसी ही अनेक भाषा तथा साहित्य सेवी संस्थाएँ इस महान् कार्य को समर्पित हैं. राज्यों की तथा केन्द्र की भाषा एवं साहित्य अकादमियाँ भी इस कार्य को मन, वचन, कर्म से कर रही हैं.

इधर एक संकट हिन्दी की पठनीयता को लेकर चर्चा का विषय बनने लगा है. यह ठीक है कि विगत सौ वर्षों में क्रमश: हिन्दी का विकास हुआ है, उसकी गति बढ़ी है, प्रकाशन बढ़ा है, स्वीकृति बढ़ी है पर यह भी गलत नहीं कि देशकाल, स्थितियों और परिस्थितियों ने हिन्दी की पठनीयता को संकुचित किया है. लेखक भी अब उस प्रकार का कालजयी साहित्य नहीं दे पा रहे जैसा कि भारतीय परंपरा के महान् लेखकों ने दिया है. हम तुलसीदास, जायसी, कबीर, सूर, मीरा रहीम, रसखान, बिहारी, घनानंद, पद्माकर, वृंद, भारतेन्दु हरिश्चंद्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी वर्मा, दिनकर, बच्चन, अज्ञेय, मुक्तिबोध, प्रेमचंद, मोहन राकेश, आचार्य शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. नगेन्द्र आदि

जैसे बड़े नाम जब लेते हैं तो यह लगता है कि इस सशक्त परंपरा से प्राप्त रामचरितमानस, पद्मावत्, कामायनी, साकेत आदि जैसी रचनाएँ अब नहीं बनतीं. कालिदास अब पैदा नहीं होते. महादेवी वर्मा और मीरा अब जन्म नहीं लेतीं.

किन्तु यह भी सत्य है कि मशीन के इस युग में, लोहे पत्थर के इस युग में संवेदनाएँ भी कम हुई हैं. साहित्यिक अभिरुचि भी कम हुई है. साहित्य का प्रयोजन भी बदल गया. पुस्तकों का उद्योग बढ़ रहा है, पर किताबें, जनहित की, राष्ट्रहित की कम हो रही हैं. जीवनोपयोगी साहित्य छप तो रहा है पर जीवन के लिए उपयोगी नहीं बन पा रहा है. जरूरतमंद पाठक तक पुस्तकें पहुँच नहीं पा रही हैं. उनकी क़ीमत बहुत अधिक है. वास्तव में किताब बिक नहीं रही बेची जा रही हैं. ठीक वैसे ही जैसे हिन्दी की बात खूब हो रही है, पर हिन्दी में बात बहुत कम हो रही है. ग्रामीण तथा लोक-जीवन में भी अँग्रेजी सीखने और बोलने का फ़ैशन चल निकला है. पाठ्यक्रमों के लिए लेखन तो हो रहा है पर पाठकों के लिए नहीं हो पा रहा. पुस्तक दैनिकचर्या की अनिवार्यता नहीं रही, घरों में किताबों के लिए शैल्फ़ भी नहीं रहीं, कमरा तो दूर की बात है. मकान छोटे होते जा रहे हैं. इसलिए बुजुर्गों के साथ किताबें भी बाहर होती जा रही हैं. सब कुछ चिप में, पेन ड्राइव में, कम्प्यूटर या लैप-टॉप में सिमटता जा रहा है. बड़े-बड़े मॉल में जाने की ललक है, दो सौ रुपए का पीज़ा या आइसक्रीम खाने की सामर्थ्य है पर किताब खरीदने का मन नहीं है. लगता है कि अब साहित्यिक मन बहुत कम हो गए हैं. ठीक वैसे ही जैसे कवि मन, लेखन मन कम हो गए हैं. अब तो व्यवसायी मनों में वृद्धि हुई है. कविता, अकविता हो गयी है, कहानी अकहानी हो गई है तो पाठक भी अपाठक हो गया है. लेखकीय अहंकार ने, जोड़-तोड़ की राजनीति ने, विश्वविद्यालयी पाठ्यक्रम निर्धारण की तिकड़मों ने हिन्दी तथा हिन्दी साहित्य को क्षति पहुँचाई है.

कुल मिलाकर यह विचारणीय है कि विगत सौ वर्षों में हिन्दी ने क्या खोया, क्या पाया? नए प्रयोग खूब हुए, नई विधाएँ खूब बनीं. मीडिया ने और सिनेमा ने हिन्दी का उपकार भी किया और उसे विकार भी दिया. 'पपलू संस्कृति' के निर्माता और पक्षधर लोग जब हल्के, पिछड़े, अश्लील, यौन विमर्शी साहित्य के पक्षधर बन बैठे. स्त्री विमर्श, दलित विमर्श के बहाने अपनी दुकानें चलाने में कुछ लोग लग गए. पर क्या इन सबसे, साहित्य के इस प्रकार के विभाजन से हम हित कर रहे हैं या अहित? विचार करना होगा. यही विचार भविष्य की दिशा तय करेगा और वर्तमान दशा से प्रेरणा ले सकेगा. 'आज जो बिकेगा, वही छपेगा' संस्कृति से आहत हो रही हिन्दी भाषा और साहित्य को समसामयिकता के साथ-साथ मूल्यवत्ता, नैतिकता तथा मर्यादा से भी पुन: संबद्ध करने की आवश्यकता है. अपनी विश्वसनीयता को खो चुका साहित्य अब विश्वजनीन लगना चाहिए. साधकों की फिर आवश्यकता है. हिन्दी की साधना का स्थान अब साधनों ने ले लिया है और यह गहन चिंता का विषय भी है. लगभग ५००० पुस्तकें हिन्दी की प्रतिवर्ष छप रही हैं पर उनमें से पठनीय कितनी हैं? उनकी पठनीयता क्या और कैसी है? इसकी चिंता हिन्दी जगत् को करनी होगी. 'अर्थ लीला' ने तमाम 'साहित्यिक लीलाओं' का गला दबा दिया है. आवश्यकता है कि हिन्दी साहित्य और हिन्दी भाषा को फिर से सर्वांगीण बनाएँ. उसमें फिर से कमल और गुलाब खिलाएँ. उसमें फिर से तितली की रंगीनी, सूर्य की ऊर्जा तथा चंद्रमा की चाँदनी का विस्तार करें. हम इन विपरीत स्थितियों के भीतर से ही सन्मार्ग खोज लेंगे, ऐसा हमारा विश्वास है.

अंचल से अंतरिक्ष तक हिन्दी

सुरेशचन्द्र शुक्ल 'शरद आलोक'

माना तुम दुनियावासी हो
धनी और अभिमानी हो
संपदाओं से महल भरा
बिना भाषा अज्ञानी हो.

कल न करे नदिया का जल
गीत न गाये कोयलिया
भाषा बिन राष्ट्र गूँगा
पिया बिना प्रेम छलिया.

सीखी नहीं मातृ भाषा
कौन कहेगा तुम ज्ञानी
अंचल की भाषा हिन्दी
बनी प्रवासियों की रानी.

जन-जन की भाषा है हिन्दी
कमल कीच की अभिमानी
धरा दीप जलाती हिन्दी
राह दिखाती सैलानी.

ध्रुव जा पहुँची हिन्दी
चाँद पर एक पहेली थी
अंतरिक्ष में गूँजी हिन्दी
सुनीता की सहेली थी.

शेक्सपियर-इबसेन हिन्दी में
चहुँ ओर फैलती आशा
नव-शब्द समाहित करती
बनी अनुवाद की भाषा.

वचन दीजिये

पुष्पा 'सुमन'

मुँह दिखायी जो मुझको सजन दीजिये
माँगती हूँ मैं मुझको वचन दीजिये.

अपना संबंध है एक विश्वास का
सुख का दुःख का तथा तृप्ति का प्यास का
कर्म और धर्म का, जीत या हार का
एक दूजे में संपूर्ण अहसास का.

ऐसे अहसास का बाँकपन दीजिये
माँगती हूँ मैं मुझको वचन दीजिये.

कब ठहरता है मन, एक ही बाँह पर
एक ही प्यार पर, एक ही चाह पर
कुंतलों की सघन एक ही छाँह पर
एक ही रूप के साथ निर्वाह पर

मुझको ठहरा हुआ एक मन दीजिये
माँगती हूँ मैं मुझको वचन दीजिये.

क्या भरोसा है विषयों के अवलेह पर
टूट जाता है घन कागज़ी गेह पर
कोई रिश्ता न रहता टिका देह पर
रूप की प्रीति पर देह के नेह पर

देह के पार कोई सपन दीजिये
माँगती हूँ मैं मुझको वचन दीजिये.

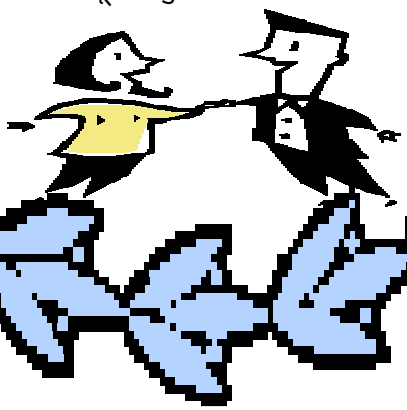

शान्ति दूत : नेल्सन मंडेला

जय वर्मा

हे शांतिदूत, हे क्रांतिदूत
अपनाये वे जो थे अछूत
तुम लड़े उसी के लिए सदा
अफ्रीका दक्षिण के सपूत
तुम नहीं डिगे जंज़ीरों में
चीख़ों को दबा लिया उर में
था रंग भेद संघर्ष किया
था नस्ल भेद तुमने जो जिया
दिखलाया स्वयं न्ययापथ
औरों के लिए, निर्बल के लिए
तुम व्रती रहे मानवता के
अनुभूति सत्य संधान किया
हिंसा का नहीं है मूल्य यहाँ
संकल्प कर लिया दृढ़ मन में
विश्वास दिला, भाईचारा
तक़दीर लिखी अफ्रीका की
हे शांतिदूत, हे क्रांतिदूत
अपनाये वे जो थे अछूत.

तप से पावन, अपना जीवन
कर मार्ग दिखाया सबको फिर
इक नया राष्ट्र, इक नया बोध
सहयोग, संगठन, त्याग, प्रेम
नि:स्वार्थ समर्पण से तुमने
आक्रोश, घृणा कर दिए दूर
एकता में बाँधकर सबको
दु:ख-सुख में बनकर साथी
अमन शान्ति के अग्रदूत
हे शांतिदूत, हे क्रांतिदूत
अपनाये वे जो थे अछूत.

अफ्रीकी नेशनल कॉंग्रेस
से राजनीति में आए तुम
देकर नारा, क्यों रंग भेद
हो मानव मानव में अभेद
ख़ामोश देश कब तक रहता
परवशता में डर क्यों सहता
लेकर संकल्प देश हित का
आज़ादी लक्ष्य था जीवन का
इतिहास दिया इक नया हमें
साहस तुममें था वो अकूत
हे शांतिदूत, हे क्रांतिदूत
अपनाये वे जो थे अछूत.

सच्चाई के कंटक पथ पर
तुम चले हाथ में ले मशाल
मानवता और उसूलों के
सीने में सुलगे थे अंगार
मुख से निकली न कोई आह
सह गए कठिन व्रत, अरे वाह
गाँधी जी से प्रेरित होकर
अपनाया मार्ग अहिंसा का
दिन रात घुटे और कष्ट सहे
रोबेन टापू की कठिन जेल
सत्ताईस साल कटे तपकर
कुन्दन बनकर बाहर आए
दी नयी दिशा अफ्रीका को
बलिदान किया फिर निज कुटुम्ब
हे शांतिदूत, हे क्रांतिदूत
अपनाये वे जो थे अछूत.

एएनसी को नव रूप दिया
आज़ाद देश को करवाने
मन की कटुता को किया दूर
सम्मान मनुज का करवाने
शोषण से किया मुक्त उनको
जो थे किसान, मज़दूर विकल
धरती माँ से वंचित न रहे
कोई, यह स्वप्न बना दृगजल
काला हो, भूरा हो कि श्वेत
भूखा न सोये कोई घर में
हैं श्वेत हमारे भाई बंधु
ये सुलह नीति दी थी तुमने
स्थापित करके लोकतंत्र
अधिकार दिला मत देने का
सब को समान कर साधिकार
हर्षित दुनिया ने तभी दिया
नोबेल शान्ति का पुरस्कार
हे शांतिदूत, हे क्रांतिदूत
अपनाये वे जो थे अछूत.

आया फिर सन् दो हज़ार सात
इतिहास यहाँ एक नया बना
स्वर्णाक्षर में लिख गया पाठ
जीते जी तुमने क्या देखा
लंदन पार्लियामेंट स्क्वेयर में
आदमक़द एक नई प्रतिमा
काँसे की मूरत कहती क्या
लंदन को मिली नई गरिमा
साथी बन स्वागत में चहके
सर विन्स्टन चर्चिल और लिंकन
आश्वस्त हो गए देख तुम्हें
ओ अमन शान्ति के महादूत
हे शांतिदूत, हे क्रांतिदूत
अपनाये वे जो थे अछूत.

व्यंग्य का सही दृष्टिकोण - हरिशंकर परसाई

(२२ अगस्त जन्मदिन पर श्रद्धांजलि)

डॉ. प्रेम जनमेजय

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल को एक रेखा साफ साफ विभाजित कर रही है और वह रेखा है देश की आज़ादी की। आज़ादी के कारण परिस्थितियाँ बदलीं तो रचनाकार के सोचने का तरीका भी बदला। आज़ादी से पहले की सोच तथा आज़ादी के दस साल बाद की सोच में पर्याप्त अंतर आया। जिस आज़ादी के प्रति मोह था, वह भंग होने की स्थिति में आ पहुँचा। वैचारिक दृष्टि से ही नहीं अन्य अनेक दृष्टियों से भारतीय परिवेश में परिवर्तन लक्षित हुए।

साहित्यिक विधाओं में भी एक अंतर दिखाई देता है। आधुनिक काल के आरम्भिक समय में जहाँ कविता एकछत्र राज्य करती थी, वहीं गद्य के प्रवेश ने धीरे-धीरे स्वयं को बराबरी के स्तर तक पहुँचाया। प्रेमचंद के माध्यम से हिंदी कथा साहित्य का आरम्भ और विकास, भारतेंदु और प्रसाद के द्वारा नाटक का आरम्भ और विकास, रामचंद्र शुक्ल, महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि के माध्यम से आलोचना का आरम्भ तथा विकास हुआ। इस तरह के विकास गद्य की अन्य विधाओं में भी हुए और यह इन्हीं विकासों का परिणाम है कि आलोचकों ने आधुनिक युग को गद्य-युग भी कहा।

गद्य को कवियों की कसौटी माना जाता है। यदि गद्य कविता की कसौटी है तो व्यंग्य गद्य की कसौटी है। कविता को अपना रूप निखारने के लिए वर्षों का समय मिला है। इसके मुकाबले गद्य ने अल्पकाल में ही बहुमुखी विकास किया है। व्यंग्य का सही स्वरूप तो स्वतंत्रता के बाद ही उभर कर आया है। स्वतंत्रता से पहले जो व्यंग्य रचना में ध्वनित मात्र होता था, आज़ादी के बाद वही रचना के रूप में विकसित दृष्टिगत होता है। हरिशंकर परसाई के शब्दों में कहें तो शूद्र व्यंग्य को ब्राह्मण का दर्जा मिला। इससे पहले कविता कहानी नाटक आदि में व्यंग्य आ जाता था। तथा व्यंग्य की पहचान हास्य के सहयोगी के रूप में अधिक की जाती थी। परन्तु इस सहयोग ने व्यंग्य को पर्याप्त हानि भी पहुँचाई। मंच के मोह में फूहड़ तथा हास्यास्पद रचनाओं के उत्पादन ने आलोचकों को यह धारणा बनाने के लिए विवश किया कि हास्य दोयम दर्जे का साहित्य होता है। यही धारणा सम्पूर्ण हास्य-व्यंग्य साहित्य के लिए बन गई।

हिंदी में सार्थक तथा गंभीर व्यंग्य की शुरूआत गद्य में हुई। कबीर और भारतेन्दु ने सामाजिक विसंगतियों पर दिशायुक्त प्रहार करने की जो परम्परा आरम्भ की थी उसे हरिशंकर परसोई ने अपने लेखन द्वारा और अधिक सशक्त किया। परसाई ने पहली बार व्यंग्य को उसके सही रूप में पहचान दिलाई। अपने आरंभिक व्यक्तव्यों में परसाई ने निरंतर इस बात पर बल दिया कि व्यंग्य और हास्य दोनों अलग अलग हैं। परसाई ने व्यंग्य के नाम पर हास्य के भौंड़े रूप की रचनात्मक अभिव्यक्ति का निरंतर विरोध किया।

व्यंग्य के प्रति हिंदी के आलोचकों की उपेक्षा पर भी उन्होंने व्यंग्यात्मक टिप्पणियाँ कीं। परसाई का मूल विरोध ऐसे आलोचकों से था जो व्यंग्य को हास्य के साथ जोड़ते हैं तथा उसे दूसरे दर्जे का साहित्य मानते हैं। परसाई एक दृष्टि सम्पन्न रचनाकार थे, इसलिए वह इस संदर्भ में सतर्क थे कि किस पर व्यंग्य किया जाए और किस पर नहीं। उनकी मान्यता थी कि अच्छा व्यंग्य करुणा उपजाता है। अतः व्यंग्य में आवश्यक नहीं है कि हँसी आए।

यह हरिशंकर परसाई की चेतना सम्पन्न दृष्टि का परिणाम था कि हिंदी गद्य में सार्थक व्यंग्य लेखन की शुरूआत हुई। बाद में श्रीलाल शुक्ल, शरद जोशी, रवीन्द्र नाथ त्यागी, मनोहर श्याम जोशी, नरेन्द्र कोहली, शंकर पुणताम्बेकर, गोपाल चतुर्वेदी, लतीफ घोघी आदि ने इसे और अधिक सुदृढ किया और स्वतंत्रता के पश्चात् हिंदी गद्य व्यंग्य निरंतर ऊँचाइयों की ओर बढता गया।

हरिशंकर परसाई के लेखन ने एक पूरे युग को प्रभावित किया है। परसाई का जीवन को देखने का एक अलग दृष्टिकोण था, एक ऐसा दृष्टिकोण जो कबीर की तरह मुराडा लिए हर तरह के पाखंड का पर्दाफाश करने को तत्पर था। परसाई ने एक ऐसी शैली का निर्माण किया जो अपनी अभिव्यक्ति में प्रखर, बिना लाग लपेट के सीधे बात कहने वाली तथा सार्थक दिशापूर्ण चिंतन से युक्त थी। इस प्रहार में कोई मैल नहीं था अपितु पाश्चात्य आलोचक मेरीडेथ के शब्दों में कहें तो एक सामाजिक ठेकेदार का रूप था जो सामाजिक सफाई में विश्वास करता है। एक साक्षात्कार के दौरान परसाई जी ने मुझसे कहा भी था - व्यंग्यकार के अंदर मैल नहीं होना चाहिए।

हरिशंकर परसाई के लेखन में व्यंग्य ऋणात्मक नहीं है। अपने समय की राजनीतिक, शैक्षिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सामाजिक विसंगतियों पर परसाई ने जो व्यंग्य किए हैं उनमें एक ईमानदार व्यक्ति द्वारा बिना किसी लाग लपेट के ऐसी विसंगतियों पर प्रहार है, जो मानव विरोधी हैं। एक झोंक में हर किसी पर आक्रमण करते चले जाना परसाई की प्रवृत्ति नहीं है। उनके लेखन में एक गहरी करुणा छिपी है जो पाठक को सही चिंतन की ओर मोड़ती है। परसाई की एक रचना है "अकाल - उत्सव", मैं जब भी इस रचना को पढ़ता हूँ रौंगटे खड़े हो जाते हैं। रचना का शीर्षक ही व्यंग्य की सृष्टि करता है। प्रस्तुत व्यंग्य के द्वारा परसाई की रचनात्मक शक्ति तथा उनकी वैचारिक सोच की झलक मिल जाती है।

इस रचना में स्पष्टतः परसाई दबे तथा साधनहीन सबके के साथ खड़े दिखाई देते हैं। वह लिखते हैं- "हड्डी - ही - हड्डी। पता नहीं किस गोंद से इन हड्डियों को जोड़कर आदमी के पुतले बनाकर खड़े कर दिए गए हैं। यह जीवित रहने की इच्छा ही गोंद है। यह हड्डी जोड़ देती है। सिर मील भर दूर पड़ा हो तो जुड़ जाता है। जीने की इच्छा की गोंद बड़ी ताकतवर होती है। पर सोचता हूँ यह जीवित क्यों हैं? ये मरने की इच्छा खाकर जीवित हैं। ये रोज कहते हैं - इससे तो मौत आ जाए अच्छा है।"

इस पीड़ा को बिना अपने जीवन का हिस्सा बनाए अभिव्यक्त कर पाना कठिन है। व्यंग्य को हास्य से जोड़ने वाले आलोचक यदि इस रचना में हास्य ढूँढने का प्रयास करेंगें, तो उन्हें निराशा ही होगी। व्यंग्य की करुणा में परिणति कैसे होती है, यदि इसकी तलाश किसी स्वनामधन्य आलोचक को करनी हो तो वह इस रचना का पाठ करे।

हरिशंकर परसाई ने व्यंग्य के लिए हास्य की बैसाखी को कभी स्वीकार नहीं किया। यही कारण है कि उनके साहित्य में फूहड़ हास्य का कोई स्थान नहीं है। उन्होंने व्यंग्यकार के रूप में स्वयं को फनीथिंग मानने से भी इंकार किया। ऐसे समय में जब हास्य - व्यंग्य रचनाकार के नाम पर मंच के आकर्षण से बँधे अनेक रचनाकार, जनता से सीधे जुड़ने का दंभ पाल व्यावसायिक हो रहे थे, परसाई ने इस मोह को पलने नहीं दिया। जिन लोगों ने परसाई के मौखिक व्यंग्य को सुना है, उनसे बातचीत की है, वे परसाई की वाक-शक्ति को अच्छी तरह से जानते हैं।

परसाई ने स्तम्भ लेखन को भी एक नई दिशा दी। अपनी आर्थिक विवशताओं के कारण परसाई ने स्तम्भ लेखन की राह पकड़ी और इससे शुरू हुआ हिंदी पत्रकारिकता का एक नया दौर। धीरे धीरे व्यंग्य से परिपूर्ण व्यंग्य स्तम्भ पत्र-पत्रिकाओं की आवश्यकता बन गए। अपने समय की विसंगतियों को समझने का इससे बढिया कोई माध्यम नहीं था। इस कार्य को अत्यधिक गति दी शरद जोशी ने। यह परम्परा आज इतनी 'गतिवान' हो गयी है कि आज इसे थामने की आवश्यकता महसूस की जा रही है। इस गति का शिकार हमारे यह दोनों अग्रज रचनाकार भी हुए। 'क्षण-भंगुर' रचनाओं के इस लेखन मोह ने इन्हें किसी बड़ी रचना के लेखन से दूर कर दिया। इसे मैं हिंदी साहित्य की अपूरणीय क्षति मानता हूँ।

आज इन दोनों रचनाकारों द्वारा प्रस्तुत किया गया यह मायाजाल अनेक नये रचनाकारों को अपनी गिरफ्त में बाँधे हुए है। परसाई और जोशी इस लेखन के खतरों से वाकिफ़ थे और एक परिपक्व रचनाकार की दृष्टि से सामयिक घटनाओं को देख परख रहे थे। परन्तु आज के नये रचनाकारों में ऐसे लेखन के लिए आवश्यक चिंतन और विचारधारा गायब है। हरशिंकर परसाई ने हिंदी गद्य को एक नया रूप प्रदान किया है, एक ऐसी विधा से उसका परिचय कराया है जो अपने तेवर में प्रखर तथा पाठकों से सीधे जुड़ने वाली है। वह हिंदी साहित्य की गद्य परम्परा के एक महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। उनकी चर्चा किए बिना गद्य साहित्य की ताकत का सही अंदाजा नहीं लगाया जा सकता है।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के महत्वपूर्ण नारे

प्रस्तुति : डॉ. वासंती मोघे

१. राष्ट्रभाषा का सम्मान राष्ट्र का सम्मान है,
राष्ट्रभाषा का निरादर राष्ट्र का अपमान है.

२. हर दिन हिन्दी दिन हो अपना,
बापू का पूरा हो सपना.

३. उच्चारण में अति सरल है, लेखन में अतिशय सुंदर
हिन्दी हिन्दुस्ताँ को प्यारी, हिन्दुस्ताँ की तरह अमर.

४. लेखन, भाषण, संभाषण में हिन्दी का व्यवहार हो,
संकुचित, लज्जित रहे ना, राष्ट्रभाषा का प्यार हो.

५. राष्ट्रभाषा, राष्ट्र वंदना, राष्ट्र की आराधना,
राष्ट्रभाषा से हो पूरी, एकता की साधना.

६. राष्ट्रभाषा तरु तले हो सकल भाषा का उत्थान,
राष्ट्रभाषा उन्नति में छुपा हुआ सबका कल्याण.

७. राष्ट्र है इक मालिका, राष्ट्रभाषा सूत है,
हम सभी हैं पुष्प, जितने भारत माँ के पूत हैं.

८. हिन्दी हमारी माता है,
युगों-युगों का नाता है.

९. देस हो परदेस हो,
राष्ट्रभाषा वेष हो.

स्नेह ठाकुर की प्रकाशित पुस्तकें

अनमोल हास्य क्षण	(नाटक-संग्रह)
जीवन के रंग	(काव्य-संग्रह)
दर्दे-ज़ुबाँ	(नज़्म व ग़ज़ल संग्रह)
आज का पुरुष	(कहानी-संग्रह)
जीवन-निधि	(काव्य-संग्रह)
आत्म-गुंजन	(आध्यात्मिक-दार्शनिक गीत)
हास-परिहास	(हास्य कविताएँ)
ज़ज़्बातों का सिलसिला	(काव्य-संग्रह)
The Galaxy Within	(A collection of English poems)
अनुभूतियाँ	(काव्य-संग्रह)
काव्य-वृष्टि	(संकलन एवं संपादन)
पूरब-पश्चिम	(आप्रवासी सम्बन्धित आलेख संग्रह)
बौछार	(संकलन एवं संपादन)
काव्य हीरक	(संकलन एवं संपादन)
संजीवनी	(स्वास्थ्य सम्बन्धी लेख)
उपनिषद् दर्शन	(अध्यात्मिक)
काव्य-धारा	(संकलन एवं संपादन)
काव्यांजलि	(काव्य-संग्रह)
अनोखा साथी	(कहानी-संग्रह)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास)
आज का समाज	(लेख-संग्रह)
चिन्तन के धागों में कैकेयी	(शोध-ग्रन्थ)
संदर्भ : श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण	
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, द्वितीय संस्करण)

प्रकाशक व वितरक

स्टार पब्लिकेशंज़ (प्रा.) लि.
४/५ बी., आसफ अली रोड
नई दिल्ली - ११०००२
भारत
Star Publishers' Distributors
55, Warren Street
LONDON – W1T 5NW
England

दिल्ली प्रेस की सरिता व अन्य राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय
पत्रिकाओं में भी रचनाएँ प्रकाशित